साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष– 1, खंड– 4, अंक– 4, अप्रैल– 2024

साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष– 1, खंड– 4, अंक– 4, अप्रैल – 2024

प्रधान संपादक

डॉ. संतोष कांबळे

पुस्तकालयाध्यक्ष,

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरताबाद, हैदराबाद

संपादक

डॉ. अजित चुनिलाल चव्हाण

सहयोगी प्राध्यापक,

वसंतराव नाईक कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय,

शहादा, जिला– नंदुरबार

सह–संपादक

प्रो. गौतम भाईदास कुवर

सह–संपादक

प्रो. सुनील गुलाब पानपाटील

कानूनी सलाहकार

एडवोकेट श्री राजेश कुमार शर्मा

अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय, नई दिल्ली

परामर्श मंडल

प्रो. अर्जुन चव्हाण
भूतपूर्व विभागाध्यक्ष (हिंदी)
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर

प्रो. सुनिल बाबुराव कुलकर्णी
निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
नई दिल्ली
एवं
निदेशक,
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

प्रो. एस.वी.एस.एस. नारायण राजू
आचार्य एवं विभागाध्यक्ष (हिंदी)
तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय,
तिरुवारूर

डॉ. गंगाधर वानोडे
क्षेत्रीय निदेशक,
केंद्रीय हिंदी संस्थान,
आगरा,
(हैदराबाद केंद्र)

एम. नधीरा शिवंति
हिंदी अध्यापिका,
स्वामी विवेकानंद
सांस्कृतिक केंद्र,
कोलंबो, श्रीलंका

साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष– 1, खंड– 4, अंक– 4, अप्रैल – 2024

EDITORIAL BOARD

डॉ. अर्चना पत्की, सेलू
डॉ. लूनेश कुमार वर्मा, छछानपैरी, छत्तीसगढ़
डॉ. मिनाक्षी सोनवणे, नागपुर
डॉ. राजश्री लक्ष्मण तावरे, भूम, (महाराष्ट्र)
डॉ. मल्लिकार्जुन एन. उजीरे, (कर्नाटक)
डॉ. राहुल कुमार, झारखंड
डॉ. संदीप किर्दत, सातारा
डॉ. वनिता शर्मा, दिल्ली
डॉ. भावना कुमारी, रांची
डॉ. एकलारे चंद्रकांत, मुखेड, महाराष्ट्र
डॉ. अनामिका जैन, मुजफ्फरनगर
डॉ. मौसम कुमार ठाकुर, गोड्डा, झारखंड
डॉ. रौबी, अलीगढ़
डॉ. अमृत लाल जीनगर, पिण्डवाड़ा (राजस्थान)
डॉ. प्रकाश आठवले ऊरुण इस्लामपुर,
डॉ. राम आशीष तिवारी, छत्तीसगढ
डॉ. दीपक प्रसाद, रांची
डॉ. रामप्रवेश त्रिपाठी, देवरिया,
डॉ. परशुराम मालगे, मंगलुरू, (कर्नाटक)
डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा, बुलंदशहर
डॉ. विजय वाघ, सेनगाँव, (महाराष्ट्र)
डॉ. रेणुका चव्हाण, नासिक (महाराष्ट्र)
डॉ. लक्ष्मण कदम, मुदखेड (महाराष्ट्र)
डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार, पटना
डॉ. पवार सीताबाई नामदेव इंदापुर
डॉ. टी. लता मंगेश, तिरुपति
डॉ. आशीष कुमार तिवारी, छतरपुर (मध्य प्रदेश)
डॉ. राम सिंह सैन, राजस्थान,
डॉ. गोरखनाथ किर्दत, उरुण–इस्लामपूर
डॉ. वैशाली सुनील शिंदे, सातारा

PEER REVIEW COMMITTEE

डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता, गंगापुर सिटी
डॉ. संजीव कुमार, दरौली, सिवान
डॉ. सचिन जाधव, सिंदखेडा
डॉ. के शक्तिराज, यल्लारेड्डी, तेलंगाणा
डॉ. सुरेन्द्र कुमार, रतिया
डॉ. शीतल बियाणी, वाळूज
डॉ. नीलम धारीवाल, उत्तराखंड
डॉ. नीतू रानी, पंजाब
डॉ. सरोज पाटिल, बेतुल, म.प्र.
डॉ. सुनिल पाटिल, चेन्नई
अर्जुन कांबले, बेलगावी, कर्नाटक
ममता शत्रुघ्न माली, मुंबई
डॉ. देविदास जाधव, अर्जापूर, महाराष्ट्र
डॉ. सोनकांबले अरुण वाई,
सुषमा माधवराव नरांजे, भंडारा (महाराष्ट्र)
डॉ. श्रीलेखा के. एन., केरल
अजीति महेश्वर मिश्रा, मुंबई, (महाराष्ट्र)
वंदना शुक्ला, छतरपुर (मध्य प्रदेश)
प्रा. तेलसंग हनमंत भिमराव (महाराष्ट्र)
डॉ. मंगल कोंडिबा ससाणे, बारामती (महाराष्ट्र)

स्वामित्व : प्रधान संपादक, साहित्याकाश मासिक पत्रिका

प्रकाशक : प्रमिला प्रकाशन, हैदराबाद

डॉ. संतोष कांबळे

पुस्तकालयाध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरताबाद, हैदराबाद

E-mail- sahityaakash24@gmail.com

Website- https://www.sahityaakash.in

*'साहित्याकाश' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार स्वयं उनके हैं । अतः संपादक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है ।

**'साहित्याकाश' पत्रिका से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल हैदराबाद न्यायालय के अधीन होंगे ।

प्रधान संपादक

डॉ. संतोष कांबळे

M.A. (History, Hindi), M.Lib. & I.Sc., M.Phil., PGDCA., PGDLAN., PGDT., UGC-NET, Ph.D.-LIS., (Ph.D.-Hindi)

पुस्तकालयाध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरताबाद, हैदराबाद

E-Mail- shreyashju@yahoo.co.in Mobile No.- 8125981194

संपादक

डॉ. अजित चुनिलाल चव्हाण

M.A., Ph.D.

सहयोगी प्राध्यापक, वसंतराव नाईक कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, शहादा, जिला– नंदुरबार

E-Mail- chavan.ajit2@gmail.com Mobile No.- 9422262445

सह–संपादक

प्रो. गौतम भाईदास कुवर

M.A., Ph.D

हिंदी विभाग प्रमुख

पूज्य साने गुरुजी विद्या प्रसारक मंडल का कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय शहादा जिला नंदुरबार महाराष्ट्र

E-Mail- gautamkuwar53@gmail.com Mobile No.- 84118 28448

प्रो. सुनील गुलाब पानपाटील

M.A., Ph.D (SET)

कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महिला महाविद्यालय, नंदुरबार

E-Mail- sgpanpatil@gmail.com Mobile No.- 9860235508

कानूनी सलाहकार

एडवोकेट श्री राजेश कुमार शर्मा

B.A., LL.B

अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय, नई दिल्ली, **E-Mail- rajesh.shagun@gmail.com Mobile No.- 981144676**

साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष– 1, खंड– 4, अंक– 4, अप्रैल – 2024

अनुक्रम

अ.क्र.	विवरण	लेखक का नाम	पृ.सं.
1.	भीम जयंती	प्रो. गौतम भाईदास कुवर	02–03
	आलेख		
2.	चयन तत्व के परिप्रेक्ष्य में 'इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं' की कविताएँ (चुनिंदा कविताओं के संदर्भ में)	डॉ. रेवनसिद्ध काशिनाथ चव्हाण	04–07
3.	दुष्यंत कुमार के 'एक कंठ विषपायी' नाटक में आधुनिक बोध	डॉ. पोपट भावराव बिरारी	08–12
4.	'जंगल के जुगनू' उपन्यास में नारी विमर्श	रघुनाथ विठ्ठल मोरे एवं प्रो. डॉ अनीता नेरे	13–18
5.	समकालीन कहानी : समसामयिक सामाजिक यथार्थ	डॉ. लूनेश कुमार वर्मा	19–22
6.	कृष्णा सोबती की कहानियों में विभाजन की पीड़ा	मोहम्मद रहबर मलिक मो. ज़ुबैर अली	23–27
7.	हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर जीवन संघर्ष	शेख हुसैन मैनोद्दीन	28–33
8.	मृदुला गर्ग कृत... 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में नारी	प्रो. डॉ. हाशमबेग मिर्जा एवं सिनगरवार पांडूरंग गिरजप्पा	34–38
9.	फीजी में अकादमिक विचारों के साथ व्यक्तिगत अनुभव	एम. नधीरा शिवंति	39–40
	कहानी		
10.	"कलेक्टर बाबू"	स्वाति मिश्रा	41–43

संपादकीय

भीम जयंती

भारत के साथ–साथ पूरे विश्व में डॉ. बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर जी की 133 वीं जयंती बड़े उत्साह के साथ मनाई गई । 14 अप्रैल 1891 में बाबासाहेब का जन्म हुआ । बाबासाहेब का जन्म अर्थात् विषमता की मृत्यु समता का उदय, अंधकार की मृत्यु और प्रकाश का उदय । बाबासाहेब का जन्म अर्थात् संविधान का उदय । भारतीय समाज वर्ण, जाति पर आधारित है । वर्णवादी, विषमतावादी, जाति व्यवस्था मिटाने के लिए बुद्ध, चार्वाक से लेकर महात्मा फुले तक अनेक समाज सुधारकों ने काफी प्रयास किए । म. गौतम बुद्ध ने मानव दुःख से मुक्ति मार्ग बताते हुए कहा कि तृष्णा ही मानव दुःख का मूल है तथा प्रज्ञा, शील, करूणा का संदेश दिया । समतामूलक समाज निर्माण करने का प्रयास किया । संत कबीर बौद्ध दर्शी थे । उनको ही बुद्ध का सही तत्वज्ञान समझ में आया । समतावादी आंदोलन को भक्ति मार्ग से आगे ले जाने का प्रयास किया । महात्मा ज्योतिबा फुले ने स्त्री शिक्षा के दरवाजे खोले । अस्पृश्यता समाप्त करने के लिए आंदोलन चलाया । दीनबंधु पत्र के माध्यम से आंदोलन को बहुजन समाज तक पहुंचाने का प्रयास किया। बहुजन राजा छत्रपति शिवाजी महाराज की जयंती मनाने का कार्य सबसे पहले तात्या साहब फुले जी ने किया । पिछड़ों का सामाजिक दृष्टि से उत्थान करने हेतु छत्रपति शाहू महाराज ने आरक्षण का प्रावधान किया । वे आरक्षण के जनक माने जाते हैं । इन परिवर्तन वादी सभी महापुरुषों को डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर ने स्वीकार किया बुद्ध, कबीर, फुले को गुरु के रूप में स्वीकार किया । बाबासाहेब अंबेडकर ने दलित में स्वाभिमान, आत्म सम्मान निर्माण किया । उनकी पूरी लड़ाई स्वाभिमान, आत्मसम्मान और मानवता के लिए थी । जिसे संविधान के माध्यम से पूरा करने में वे काफी हद तक सफल भी हुए । बाबासाहेब बहुजन समाज के अधिकारों के लिए जीवन पर्यंत लड़ते रहें । भारत की प्रतिष्ठा प्राप्ति हेतु भी बाबासाहेब ने काम किया । इन्होंने दलित, आदिवासी, महिलाओं, वेश्याओं, मजदूर, कामगार आदि दबे–कुचले लोगों का प्रबोधन किया तथा विद्यार्थियों का प्रबोधन किया । गांव, मोहल्ले शहरों में जाकर वे छोटी–छोटी बातों को समझाते रहें और लोग समझने भी लगे । भाषण, समाचार पत्रों के माध्यम से आंदोलन के माध्यम से पिछड़ों दीन–दलित पूरे बहुजन समाज का सर्वांगीण विकास हेतु वे आंदोलन चलाते रहें । एक साथ पढ़ना, अपना रोजगार संभालना और देश और समाज के लिए काम करना यह उनका अद्भुत कौशल था । बाबासाहेब के अनुयायियों की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई । हाल ही में बाबासाहेब की जयंती पूरे विश्व में धूमधाम से मनाई गई । कुछ लोगों ने जयंती को मनाते समय विचारों का प्रबोधन किया । सही दृष्टिकोण से देखा जाए तो किसी भी जयंती को विचारों का अधिष्ठान होना चाहिए । लेकिन कुछ लोग केवल नाच कर, गाकर जयंती मना रहे हैं । मानना भी चाहिए, लेकिन साथ–साथ उसकी गरिमा भी बनी रहनी चाहिए । उनकी जयंती के अवसर पर अनेक लोग चंदा इकट्ठा करते हैं, इस चंदे का उपयोग मानवता की सेवा होनी चाहिए । किसी से जबरदस्ती चंदा वसूल कर बाबासाहेब की जयंती मनाना यह समाज, संगठन, देश के लिए के लिए उचित नहीं है । बाबासाहेब के जमाने में दलित समाज के तमाशबीन बापू पटेराव बाबासाहेब के सामाजिक आंदोलन को कुछ चंदा देने के लिए राजगृह पहुंचे थे । तब बाबासाहेब ने उनसे चंदा लेने से इनकार कर दिया था क्योंकि यह चंदे की राशि अनुचित तरीके से कमाया गया धन था । उनकी इस राशि को लेने इन्कार करते हुए

उन्होंने कहा कि मैं अपने इस पवित्र काम में इस राशि का उपयोग नहीं कर सकता । बाद में दिलीप कुमार जी भी गए थे । लेकिन दिलीप कुमार जी को भी बाबासाहेब ने फटकारा था और कहा था कि महिलाओं के साथ नाच कर पैसे कमाने वाले से मैं पैसा अपने आंदोलन के लिए नहीं लूंगा । दान कहां से लेना है और कहां से नहीं लेना है यह बाबासाहेब ने हमें बहुत ही अच्छी तरह से समझाने का प्रयास किया है । लेकिन वर्तमान में दान लेने की और दान देने की पद्धतियां पूरी तरह से अनुचित होती जा रही है । जबरदस्ती से किसी को धमका कर जयंती मनाने के लिए चंदा लेना, यह कहीं ना कहीं बंद होना चाहिए । जयंती को विचारों का अधिष्ठान देने का प्रयास करना चाहिए । किसी पाश्चात्य विद्वान ने कहा था कि विद्वान मरता है लेकिन उनके विचार जिंदा रहते हैं । लेकिन बाबासाहेब ने कहा था कि अगर उसके अनुयाई उनके विचारों को आगे नहीं ले जाते तो उस विद्वान के साथ–साथ उसके विचार भी मर सकते है । इसलिए विचारों को जिंदा रखना है तो विचारों को आगे ले जाना बहुत ही जरूरी है । उनके विचारों को ग्रहण करते हुए उनका पालन करते हुए भीम जयंती मनाते हैं तो सही रूप में बाबासाहेब को आदरांजली, अभिवादन होगा । वर्तमान में दलित समाज राजनीतिक दृष्टि से अनेक खेमों में विभक्त हो चुका है । दलितों की स्वतंत्र राजनीति लगभग बाबासाहेब के बाद समाप्त होती जा रही है । यह बड़ी चिंता की बात है । राजनीतिक सत्ता से ही समाजिक विकास हो सकता है । इसलिए बाबासाहेब ने कहा था कि हमें शासनकर्ती जमात बनने चाहिए । लेकिन दलित राजनीति को देखते हुए बाबासाहेब का सपना पूरा होगा ऐसा तो नहीं लगता । सामाजिक दृष्टिकोण से भी दलित समाज अलग–अलग खेमों में विभक्ति होता जा रहा है । जयंती भी इस खेमों में विभक्त हो गई है । बाबासाहेब ने कहा था संगठित होना चाहिए । लेकिन संगठित होने के बजाय हम विघटित होते जा रहे हैं । यह सामाजिक विकास की दृष्टि से चिंता की बात है । जब पूरा समाज राजनीतिक, सामाजिक दृष्टिकोण से संगठित होकर एक साथ लड़ता है, पढ़ता है आगे जाता है तो ही बाबासाहेब का सपना पूरा हो सकता है । इसलिए हमें अहंकार, एक दूसरे के प्रति द्वेष की भावना, विघटनवादी वृत्ति का त्याग करते हुए एकजुट होना चाहिए । एकजुट होकर राजनीतिक । सामाजिक समता की लड़ाई लड़नी चाहिए । सही ढंग से इस तरह की लड़ाई में लड़ते है तो बाबासाहेब का सपना पूरा हो सकता हैं । समाज की सामाजिक राजनीतिक एकता बंधुता उनको आदरांजलि होगी अभिवादन होगा । सामाजिक, राजनीतिक दृष्टि से इकट्ठा होंगे तो हम बाबासाहेब का सपना पूरा करेंगे । आइए हम बाबासाहेब के सपनों को साकार करते हैं ।

सह–संपादक

प्रो. गौतम भाईदास कुवर

चयन तत्व के परिप्रेक्ष्य में 'इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं' की कविताएँ (चुनिंदा कविताओं के संदर्भ में)

डॉ. रेवनसिद्ध काशिनाथ चव्हाण
हिंदी विभाग
फर्ग्युसन महाविद्यालय (स्वायत्त) पुणे
दूरभाष : 9922869806
ई–मेल– revanchavan1989@gmail.com

शोध सार :

साहित्य (शाब्दिक कला) के अध्ययन हेतु शैलीवैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली ने आज अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है । किसी भी साहित्यिक रचना या विधा में निहित भाषिक इकाइयों का यह पद्धति अपने प्रतिमानों के आधार पर मूल्यांकन कर रचना के मर्म को उद्घाटित करती है । रचयिता के कलात्मकता को वस्तुनिष्ठता से वैज्ञानिकता, कृति को स्वनिष्ठ एवं पूर्ण इकाई मानकर निष्पक्षता से शैलीविज्ञान अध्ययन करता है । इसकी दृष्टि भाषावादी है इसलिए साहित्य को शाब्दिक कला के रूप में अपनाते हुए साहित्य का अध्ययन करता है । रचनाकार द्वारा अपनी रचना में भाषिक इकाईयों का कलात्मक तरीके से जो प्रयोग होता है उसकी तह तक पहुँचकर रचनात्मक कलासौंदर्य, भावसौंदर्य को उजागर करता है । शैलीविज्ञान भाषा के साक्ष्य पर कृति की 'साहित्यिकता' को महत्व देता है न कि कवि का परिवेश, कवि पर पड़े रचनात्मक प्रभाव को । शैलीविज्ञान के पास किसी भी रचना या साहित्यकृति की परख के लिए – चयन, विचलन एवं समानांतरता जैसे प्रतिमान हैं । इन्हीं प्रतिमानों के माध्यम से रचना का मूल्याकंन करना शैलीविज्ञान का साध्य है और साधन के रूप में – ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, अर्थ आदि ।

सुशांत सुप्रिय समकालीन कविता के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं । अपनी कविता का उन्होंने स्वंय विकास किया है । उनके काव्य–चिंतन के केंद्र में आज का मानव रहा है । उनकी कविताओं में जनवादी चेतना और जनसामान्य की वेदना अनेक रूपों में शब्दबद्ध हुई है । कवि ने अपने सर्जनात्मक प्रसाद में ऐसे मानव–जीवन को स्थान दिया है जो विभिन्न स्थितियों से, राजनीतिक छल–प्रपंच से, मूल्यविघटन से, वैश्वीकरण की थपेड़ों से, प्रकृति के शोषण से आहत है । कवि ने मानव–जीवन से संबंधित रेशे–रेशे को 'इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं' नामक काव्यसंग्रह में प्रस्तुत किया है । इसी संग्रह की कविताएँ मनुष्यता को बचाये रखने के लिए आवाहन करती हैं ।

बीज शब्द– शाब्दिक कला, कलात्मकता, वस्तुनिष्ठता, वैज्ञानिकता, साहित्यिकता, प्रतिमान, जनवादी चेतना, सर्जनात्मक प्रासाद, काव्य–चिंतन आदि ।

सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक परिवेश में छिपे मारीच तंत्र को 'इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं' संग्रह कविताएँ निरावृत्त करती है । समकालीन मानव जीवन में उत्पन्न तमाम तरह की विड़ंबनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति करने वाला यह कवि का दूसरा काव्यसंग्रह है । जैसे – "मित्रो/आम आदमी की असुविधा के यज्ञ में/जहाँ मुट्ठी भर लोगों की सुविधा का/ पढ़ा जाए मंत्र/वह कैसा गणतंत्र"[1] आम आदमी के जीवन की त्रासदी को अभिव्यक्त करती ये पंक्तियाँ संवेदनशील पाठक को

झकझोर देती है । इन्हीं विशेषताओं के कारण इस संग्रह की कुछ चुनिंदा कविताओं को शैलीविज्ञान के चयन प्रतिमान के माध्यम से परखा जाएगा । शैलीविज्ञान एक स्वतंत्र ज्ञानानुशासन है जो भाषा और साहित्य दोनों को साथ लेकर चलता है । शैलीविज्ञान वस्तुपरक चिंतन, भाषावादी दष्टिकोण और वैज्ञानिक तकनीक से साहित्य को परखता है । शैलीविज्ञान क्या है यह स्प्ष्ट करते हुए प्रसिद्ध शैलीविद 'शीतांशु' लिखते हैं– "शैलीविज्ञान की सामान्य परिभाषा इसे 'शैली के अध्ययन के विज्ञान' के रूप में परिभाषित करने की है और इसकी विशिष्ट परिभाषा इसे एक ऐसी भाषा–माध्यमिक, वस्तुनिष्ठ आलोचना प्रणाली के रूप में उपस्थित करने की है जिसमें 'पाठ के कथ्य–मर्म और उसके सौंदर्य' का उन्मीलन संभव हो पाता है ।"[2] अर्थात शैलीविज्ञान रचना की भाषा का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण कर रचना के मर्म को पाठकों के सामने प्रकट करता है । चयन शैलीविज्ञान का प्रमुख एवं महत्वपूर्ण प्रतिमान रहा है । वैसे देखा जाए तो चयन का अर्थ है– 'चुनना या चुनाव करना ।' चयन को मूलाधार मानते हुए भारतीय तथा पाश्चात्य जगत ने शैलीविज्ञान को परिभाषित किया है । कवि भाषा के रत्नाकर से अपनी काव्यसर्जना के अनुकूल भाषिक रत्न चुनता है । आशय यह है कि अपने विशिष्ट अनुभव जगत की अभिव्यक्ति सार्थक हो इसलिए उपलब्ध भाषिक विकल्पों में से किसी एक का चयन रचयिता करता है । इसे ही चयन कहा जाता है । चयन क्या है यह स्पष्ट करते हुए डॉ. उषा सिंहल ने लिखा है – "चयन शब्द का अर्थ है चुनना अर्थात कई एककों, वस्तुओं आदि में से किसी एक का चुनाव करना । शैलीविज्ञान के संदर्भ में इस शब्द का अर्थ है– विशेष अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए भाषा द्वारा प्रयुक्त एकाधिक विकल्पों में से किसी एक का चुनाव।"[3] चयन प्रतिमान के परिप्रेक्ष्य में किसी भी कृति में प्रयुक्त ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, अर्थ आदि का विश्लेषण किया जाता है । यहाँ पर 'इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं' काव्यसंग्रह में से कुछ कविताओं का चयन तत्व के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण निम्नलिखित प्रकार से हैं–

शब्द चयन:

कोई भी रचनाकार हो, अपनी रचनात्मक मार्मिकता को सरस और प्रभावी बनाने के लिए शब्दों का सटीक चयन करता है । भोलानाथ तिवारी ने शब्द चयन के कई आधार सोदाहरण बताये हैं । रचयिता सर्तकता के साथ शब्दों का चयन करता है । शब्द चयन की प्रक्रिया कई रूपों में होती है ।

जैसे– "हमें बचाओ, हम त्रस्त हैं–/डरे हुए लोग छटपटा रहे हैं/किंतु दूसरी ओर केवल एक/रेकॉर्डेड आवाज उपलब्ध है–/'इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं'।"[4] इस उदाहरण में युगीन प्रवृत्ति के अनुरूप शब्दों का चयन हुआ है । संवेदनाहीन होते जा रहे मानव समाज की सच्ची तस्वीर 'रेकार्डेड आवाज, रूट की सभी लाइनें' इन शब्दों द्वारा प्रस्तुत की है । ये शब्द आज के अकर्मण्यता, असंवेदनशीलता के तरफ संकेत करते हैं । मानो यंत्रों की भाँति मनुष्य भी अपनी संवेदनओं को खोकर यंत्रवत बना हुआ है ।

"आँसू खून और पसीने से सने/वे समुदाय माँगते हैं/अपने अंधेरे समय से/ अपने हिस्से की धूप/अपने हिस्से की हवा।"[5] समाज में बढ़ती वर्गगत विषमता की दरार को दर्शाने हेतु कवि द्वारा 'अंधेरे समय' इस शब्द का प्रसंगानुकूल चयन हुआ है । समय की सही स्थिति इससे द्योतित हो रही है ।

"सबसे बदहाल, सबसे गरीब/ सबसे अनपढ़, सबसे अधिक/लुटे–पिटे करोड़ो लोगों वाले/कुछ समुदाय हुआ करते हैं । जिन्हें भूखे, नंगे रखने की साजिश में/लगी रहती है एक पूरी व्यवस्था।"[6] 'पूरी व्यवस्था' यह जो शब्दबंध है वह व्यवस्था के अमानवीय रूपों की ओर ध्यान आकर्षित करता है । इस काव्यांश में अर्थ की दूरगामी व्यंजनार्थ हेतु शब्द चयन हुआ है ।

शब्द चयन अंत्यत व्यापक स्तर पर होता है । शब्द चयन व्याकरणिक कोटियों– संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण आदि में भी पाया जाता है । जैसे–

संज्ञा चयन– "वे समुदाय/जिनमें जन्म लेते हैं बाबासाहेब अंबेड़कर/महात्मा फुले और असंख्य महापुरुष/किंतु फिर भी जिनमें जन्म लेने वाले/करोड़ो लोग अभिशप्त होते हैं/अपने के खैरलाँजी या मिर्चपुर की बलि चढ़ जाने को ।"[7] इस काव्यांश में नामवाचक संज्ञाओं का सटीक चयन किया है । बाबासाहेब, महात्मा फुले जी ने सामाजिक न्याय के लिए अपना जीवन समर्पित किया था । आज के समय पर हम दृष्टिपात करें तो यह देखते हैं कि देश में संवैधानिक प्रावधान होते हुए भी खैरलाँजी, मिर्चपुर कांड सरीखे संस्करण देश भर में घटीत होते हैं ।

सर्वनाम चयन– "कुछ समुदाय हुआ करते हैं/जिनमें जब भी कोई बोलता है/'हक' से मिलता–जुलता कोई शब्द/उसकी जुबान काट ली जाती है ।"[8] इसी काव्यांश में अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'कोई– कुछ' का सार्थक प्रयोजन हुआ है । अन्याय– अत्याचार के खिलाफ सभी आवाज नहीं उठाते हैं पर जो भी आवाज उठाने की कोशिश करता है उसकी जुबान साम–दाम–दंड–भेद अपनाते हुए बंद की जाती है इसी ओर यह सर्वनाम चयन पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है ।

क्रिया चयन– "वे समुदाय/ जिन से छीन लिए जाते हैं/उनके जंगल, उनकी नदियाँ, उनके पहाड़ जिनके अधिकारों को रौंदता चला जाता है/कुल–शील–वर्ण के ठेकेदारों का तेजाबी आर्तनाद।"[9] यहाँ पर 'दबाता' 'मिटाता' जैसे क्रियावाचक शब्दों की जगह 'रौंदता' का प्रयोग प्रभावी हुआ है । इसके कारण यह ज्ञात हो जाता है कि शोषण का पहिया कितना प्रभावशाली है । इस उदाहरण में 'रौंदता' क्रिया का कवि ने बड़ी कलात्मकता के साथ प्रयोग किया है ।

विशेषण चयन– संज्ञा एवं सर्वनाम की विविध भावभंगिमाओं को उद्भासित करने के लिए काव्य में विशेषणों का चयन सर्वाधिक होता है । कवि ने भी कई विशेषणों का चयन किया है । एक उदाहरण दृष्टव्य है– "सुनो द्रोणाचार्यों/हालाँकि तुम विजेता हो अभी/सभी मठों पर तैनात हैं/तुम्हारे खूँखार भेडिए।"[10] संज्ञासाधित विशेषण 'खूँखार भेडिए' की योजना इस उदाहरण में हुई है । यह विशेषण राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक तंत्र के क्रूर चेहरे को नोच कर सबके सामने उजागर करता है ।

वाक्य चयन– अर्थ की दृष्टि से भाषा की पूर्ण एवं सार्थक इकाई वाक्य होती है । किसी भी रचयिता के पास वाक्य स्तर पर चयन के अत्याधिक अवसर होते हैं । इसी तथ्य के अनुसार रचनाकार अपनी रचना में एक ओर व्याकरण निर्दिष्ट वाक्य व्यवस्था का चयन करते हैं तो दूसरी ओर कई संभाव्य विकल्पों में से वाक्य चयन करते हैं । सुशांत जी के काव्य में वाक्य चयन विविध स्तरों पर हुआ है । जैसे–

"हमें बचाओ, हम त्रस्त हैं ।"[11] आज के मानव की त्रासद स्थिति को बया करने प्रित्यर्थ कवि ने यहाँ रचना के आधार पर वाक्य भेद में से सरल वाक्य का प्रयोग किया है ।

"राष्ट्रपति भवन के प्रांगण/संसद भवन के गलियारे और/मंत्रालयों की खिड़कियों से/कहाँ दिखता है सारा देश।"[12] रचना के आधार पर वाक्य भेद में से यह संयुक्त वाक्य है । सत्ता के सर्वोच्च स्थान से देश के कई प्रदेशों की अनदेखी की तरफ यह वाक्य चयन संकेत है ।

"न कोई खिडकी, न दरवाजा, न रोशनदान है/काल–कोठरी सा भयावह वर्तमान हैं ।"[13] अर्थ के आधार पर वाक्य भेद में से निषेधवाचक वाक्य का चयन इस उदाहरण में हुआ है । निषेधवाचक वाक्य की सर्जना के लिए कवि ने 'न' का प्रयोग प्रभावी रूप से किया है । जन– जीवन के विसंगतिपूर्ण स्थिति को यह वाक्य चयन प्रकट करता है ।

अर्थ चयन:

साहित्य की भाषा में अर्थ स्तरीय चयन की भी संभावना होती है । भावों की अभिव्यक्ति के लिए मुख्य तीन प्रचलित पद्धतियाँ – अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के आधार पर ही रचनाकार अर्थ चयन को वरीयता देते हैं । अर्थ चयन के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

"वे समुदाय/जिनमें जन्म लेते हैं बाबा साहेब आंबेड़कर/महात्मा फुले और असंख्य महापुरुष/किंतु फिर भी जिनमें जन्म लेने वाले/करोडों लोग अभिशप्त होते हैं/अपने समय के खैरलाँजी या मिर्चपुर की/बलि चढ़ जाने को।"[14] बड़ी ही सहजता, सरलता से कवि बाबा साहेब, फुलेजी और अन्य महापुरुषों के कार्य की याद दिलायी है, जिसकी प्रतीति बिना किसी संकेतग्रह में बाधा पहुँचे हो जाती है । यहाँ पर अभिधार्थ अर्थ चयन हुआ है ।

"सुनों द्रोणाचार्यों/हालाँकि तुम विजेता हो अभी/सभी मठों पर तैनात हैं/तुम्हारे खूँखार भेडिए ।"[15] इस काव्यांश में 'द्रोणाचार्य' का प्रयोजन के आधार पर अर्थ प्रकट होता है । आज के द्रोणाचार्य नुमा आचरण पर यह प्रहार है । यह लक्षणार्थ अर्थ चयन का उदाहरण है ।

निष्कर्ष:

उपरोक्त शैलीवैज्ञानिक विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी रचना के मूल्यांकन के लिए शैलीविज्ञान रचना के निष्पक्ष अध्ययन के लिए एक उत्कृष्ट पद्धति है । जिसके प्रतिमानों के आधार पर रचनात्मक मर्म को पाठकों तक पहुँचाया जा सकता है । चयन शैलीविज्ञान का प्रमुख एंव महत्वपूर्ण प्रतिमान है । चयन तत्व के आधार पर सुशांत सुप्रिय के 'इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं' की चुनिंदा कविताओं को परखने के पश्चात यह तथ्य स्पष्ट होता है कि कवि ने अपनी कविताओं में भावाभिव्यक्ति की प्रभावशीलता के लिए भाषिक इकाईयों का सटीक एंव संदंर्भानुसार चयन किया है । जिसके कारण कवि की काव्य शैली का पथ निर्धारित हो जाता है । कवि ने शब्द संपदा का यथोचित चयन करते हुए अपनी कविता को अर्थपूर्ण बनाते हुए भावपूर्ण भी बनाया है ।

संदर्भसंकेत सूची:

1.सुशांत सुप्रिय, इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं, अंतिका प्रकाशन गाजियाबाद, पहला संस्करण 2015, पृ 63
2.शशिभूषण पाण्डेय 'शीतांशु', शैलीविज्ञान: प्रकार प्रतिमान और, हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ़, प्रथम संस्करण, पृ 1
3.डॉ. उषा सिंहल, शैलीविज्ञान और नाटक, पीतांबर पब्लिशिंग कंपनी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1984 पृ 43
4.सुशांत सुप्रिय, इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं, अंतिका प्रकाशन गाजियाबाद, पहला संस्करण 2015, पृ 14
5.वही, पृ 42
6.वही, पृ 41
7.वही, पृ 42
8.वही, पृ 41
9.वही, पृ 43
10.वही, पृ 43
11.वही, पृ 14
12.वही, पृ 10
13.वही, पृ 14
14.वही, पृ 42
15.वही, पृ 43

दुष्यंत कुमार के 'एक कंठ विषपायी' नाटक में आधुनिक बोध

डॉ. पोपट भावराव बिरारी
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
म.वि.प्र.समाज संचालित,
कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय त्र्यंबकेश्वर, जि.नासिक
ईमेल– popatbirari@gmail.com
मो. 9850391121

सारांश :–

दुष्यंत कुमार ने 'एक कण्ठ विषपायी' इस पौराणिक गीति–नाट्य को समकालीन सच्चाईयों से सम्बद्ध करके इसे व्यापक आयाम प्रदान किया है । यह नाटक पौराणिक आख्यान पर आधारित होते हुए भी अपने में आधुनिक है । उसमें कई प्रश्न एक साथ उठाये गये हैं । आधुनिक प्रजातांत्रिक पद्धति की शिथिलता, शासन या सत्ता की व्यक्तिगत सनक या लिप्सा के कारण युद्ध, युद्ध का औचित्य और उससे घुटता–टूटता हुआ सामान्य आदमी जिसका प्रतीक सर्वहत है लेकिन उसकी मूल संवेदना यह है कि परंपरा से जुड़ा हुआ व्यक्ति या समाज उस परंपरा के टूटने को या जोड़े जाने को सहज स्वीकार नहीं करता, वह या तो विक्षुब्द और कुपित हो उठता है या स्वयं टूटता है किंतु जो महान व्यक्तित्व होते हैं वे परम्परा से कट कर नये मूल्यों को अंगीकार कर लेते हैं । शंकर ने जिस प्रकार थोड़े ही समय में नई स्थितियों को स्वीकार किया इसलिए उन्हें एक कंठ विषपायी कहा गया है ।

यह सत्य है कि परिवर्तन को स्वीकार करना किसी के लिए भी सहज नहीं होता किंतु परिवर्तन जड़ता को समाप्त करने के लिए अनिवार्य होता है । परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है । सभ्यता और संस्कृति का विकास परिवर्तन से ही होता है । नाटक में परंपरावादी मानसिकता और आधुनिक मानसिकता के अंतर्विरोध को दुष्यंत कुमार ने बखूबी उकेरा है । यह नाटक आधुनिक जीवन की विडंबनाओं को चित्रित करने में पूर्ण समर्थ है । इस नाटक में आधुनिक प्रजातंत्र की विसंगतियों पर करारा प्रहार किया गया है । सर्वहत जैसे काल्पनिक पात्र की उद्भावना कर दुष्यंत कुमार ने आमजन के साथ अपने आंतरिक जुड़ाव को दर्शाया है ।

प्रस्तावना :–

दुष्यंत कुमार द्वारा लिखित 'एक कण्ठ विषपायी' यह गीति–नाट्य कृति है । इसमें प्रायः मिथक ही होते हैं । मिथक जो हमारे चेतन के साथ– साथ अवचेतन से भी गहरे तौर पर जुड़े होते हैं । परंपरागत रूप से इनका प्रभाव हमारे जीवन और संस्कृति पर प्रबल होता है । इन मिथकों से रचनाकारों को एक कथ्य मिल जाता है जिसके सहारे रचना का पूरा वितान रचा जा सकता है । देवताओं में शिव ऐसे मिथक हैं जो औरों से बिलकुल अलग आभा वाले हैं । चाहे उनका पहनावा हो, चाहे उनकी सवारी नंदी, चाहे उनका खान–पान हो, चाहे उनके गण–अनुचर सब आम आदमी के आस–पास के बिम्ब हैं । इस शिव की ख़ासियत यही है कि अगर इनका तीसरा नेत्र खुल गया तो फिर दुनिया को ख़ाक होते देर नहीं लगेगी। सभी प्रार्थना करते हैं कि यह नेत्र ऐसे ही बंद रहे। यह शिव उस आम आदमी की शक्ति का पर्याय नहीं जिसके जगने पर सत्ताधीशों को ज़मींदोज़ होते देर नहीं लगती। ये सत्ताधीश अपनी भलाई इसी में समझते हैं कि शिव अपना नेत्र बंद रखें। अर्थात् जनता अपनी शक्ति अपने सामर्थ्य को भूली रहे। वह सोयी ही रहे, किसी भी क़ीमत पर जगने न पाए। यह शिव जो कि एक जन–प्रतीक है, दुनिया भर के विष को अपने कण्ठ में

समाहित किए हुए है । क्या दूसरे किसी प्रतीक में विष को भी आत्मसात करने की ऐसी ही क्षमता है । ख़ासकर अपने स्वार्थों को दरकिनार कर इस दुनिया को बचाने के लिए विष को अपने ही कण्ठ में समाहित कर लेने का साहस शिव में ही है ।

'एक कण्ठ विषपायी' नाटक में आधुनिक बोध :–

'एक कण्ठ विषपायी' नाटक चार अंकों में विभक्त है । पहला अंक दक्ष और उनकी पत्नी 'वीरिणी' के संवाद से शुरू होता है । चर्चा दक्ष द्वारा 'शिव' की आलोचना से शुरू होती है जिसका बचाव 'वीरिणी' करती हैं । 'दक्ष' 'सती' द्वारा शिव से शादी को लेकर अप्रसन्न हैं और शिव की आत्म प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचाना चाहते हैं । इसी को ध्यान में रख एक विराट यज्ञ का आयोजन कर रहे हैं जिसमें कैलास लोक के हर प्रतिवेशी को तो बुलाया गया है लेकिन जामाता शिव को जान–बूझकर आमंत्रित नहीं किया जाता । वीरिणी यह जामाता को बुलाने के संदर्भ में दक्ष से कहती है तब दक्ष कहते है–

"जामाता?
मैं तो उसको संबंधी कहने में
खुद को अपमानित अनुभव करता हूँ ।
देवि!
क्या संबंधी का यह अर्थ नहीं
की हमारी कोमल
अथवा
मधुर स्नेह की धारा से
कोई संयुक्त हो?"[1]

वस्तुतः शिव से विवाह करने की सती की ज़िद को दक्ष अपनी प्रतिष्ठा पर एक बड़ा आघात मानते हैं । ऐसी मनोवृत्ति उस पितृसत्तात्मक समाज की होती है जो स्त्री जाति को अपने अनुसार हाँकना चाहता है । इससे सती क्षुब्ध हैं । स्त्री की तनिक भी स्वतंत्रता उसे बर्दाश्त नहीं होती । अगर स्त्री ने अपने मन से कोई निर्णय ले लिया तो यह पुरुष समाज के लिए बर्दाश्त नहीं होता है । मानसिक दोहन के क्रम में पुरुष समाज इसे अपनी इज़्ज़त और मर्यादा से जोड़ लेता है । मिथक में इस घटना का होना यह भी बताता है कि पितृसत्तात्मक समाज की यह मनोवृत्ति आज की नहीं बल्कि बहुत पुरानी है । सती के संदर्भ में दक्ष की यह सोच भी उसी रूढ़ परंपरा को दर्शाती है जो पुरुष को ही श्रेष्ठ तथा बेहतर एवं स्त्री को हेय एवं निम्नतर मानता है । अपने घमंड में दक्ष यह भी भूल जाते हैं कि सती न केवल शिव की पत्नी हैं बल्कि उनकी पुत्री भी हैं । अंततः यज्ञ वेदिका में सती द्वारा अपनी आत्माहुति देने के साथ ही पहले अंक का समापन होता है ।

नाटक का दूसरा अंक दृश्य से शुरू होता है जिसमें दक्ष की समूची नगरी भग्न दिखायी पड़ती है । युद्ध अन्ततः अपने साथ तबाही ही लाता है । तभी तो जब ब्रह्मा कहते हैं कि 'शेष यहां कुछ भी नहीं बचा' तो सर्वहत कहता है–

"कौन कहता है–
यहाँ कुछ भी नहीं है शेष ।
यहाँ शेष ही तो है सब कुछ...
देखो...
सारे नगर में ताजा
जमा हुआ रक्त है

और सड़ी हुई लाशें हैं
मुड़ी हुई हड्डियाँ हैं
क्षत–विक्षत तन हैं
और उन पर भिन्नाते हुए
चीलों और गिद्धों के झुण्ड
और मक्खियाँ हैं ।"[2]

अतः ये युद्ध शासकों की महत्त्वाकांक्षाओं की परिणति होते हैं जिसकी चक्की में सिर्फ़ जनता ही पिसती है । जनता के प्रतिनिधि के तौर पर आए पात्र 'सर्वहत' के आत्मसंवाद में यह सवाल मुखर होकर आता है कि जनता क्या है? 'राज्य की प्रजा' या 'शायद कुछ भी नहीं' या 'सब– कुछ'। यह सवाल आज भी प्रासंगिक है और परेशानी यह कि इसका ठीक– ठीक जवाब आज तक नहीं ढूँढ़ा जा सका है । इसी अंक में एक अन्य प्रसंग में विष्णु कहते हैं कि 'प्रजापति दक्ष ने यज्ञ नहीं युद्ध का आयोजन किया था ।' जनता की भावनाओं का दोहन कर अपना हित साधती हैं । और जब तक उनकी हक़ीक़त समझ में आए तब तक सब–कुछ नष्ट–भ्रष्ट हो चुका होता है । जीतते–हारते शासक हैं, रही जनता की बात तो वह तो हमेशा हारती ही है । इतिहास गवाह है कि हर ज़माने में शंकर को ही कालकूट पीना पड़ता है ।

नाटक के तीसरे अंक में शोक संतप्त शिव का आत्मालाप और उनके द्वारा दी गई ध्वंस की चेतावनी है । हमारी यह दुनिया ऐसी ही है जहाँ काम करने वाले लोग जिनके दम पर समाज और राष्ट्र का समूचा कारोबार चलता है, वे हीन माने जाते हैं और भूखे–प्यासे रह जाते हैं । इसके विपरीत परिश्रम को हेय मानने वाले लोग उच्च माने जाते हैं और सारे ऐशो आराम के साथ जीवन यापन करते हैं । ऐसे लोग प्रभु वर्ग के लोग होते हैं । इस प्रभुता का आकर्षण विचित्र होता है । इसे उद्घाटित करते हुए शिव कुबेर से कहते हैं–

"कर्तव्य तुम्हारा
धन–संचय से इतर
और भी है कोई?
यदि है तो, हे धनपति कुबेर!
यह है कुयोग;
मैं तो समझा था
धन के दृष्टि नहीं होती
भावना–शून्य हो जाते हैं
धनवान लोग ।
आत्मस्थ बना देती है सत्ता मित्रों को
आचरण बदल जाते हैं उनके क्षण–क्षण
अपनत्व खत्म हो जाता है
बच रहता है थोड़ा–सा शिष्टाचार
और औपचारिकता,
प्रभुता का ऐसा ही होता आकर्षण।"[3]

सत्ता बिलकुल अपना–सा लगने वाले व्यक्ति को भी बदल डालती है । सत्ताधारी व्यक्ति की सोच और आचरण पूरी तरह बदल जाते है ।

नाटक के चौथे अंक में शिव के देवलोक पर आक्रमण और कोप का सामना करने के लिए देवताओं के बीच हुई बातचीत को आधार बनाया गया है, विष्णु कई फलक वाले प्रणाम बाण को छोड़ते हैं जो शिव के कंधे पर पड़ी हुई सती के शव को खण्ड–खण्ड कर हर दिशाओं में छितरा देते हैं । और काव्य–नाटिका का यहीं पर समापन हो जाता है । अतः इस अंक में युद्ध की अनिवार्यताओं पर देवताओं के बीच एक बहस वर्णित है जिसमें कई मौजूद समस्याओं को उठाया गया है । शासक आज भी अपनी भली–बुरी हर बात को मनवाने के लिए युद्ध को ही अंतिम साधन मानता है भले ही उसका दुष्परिणाम जनता को युगों तक चुकाना पड़े । इसी प्रसंग में द्वितीय विश्व युद्ध के अंतिम दिनों में जापान के हिरोशिमा और नागासाकी शहरों पर गिराये गये परमाणु बम की याद आती है, जिसके बाद यह भयावह युद्ध औपचारिक तौर पर समाप्त हुआ था । इसमें कोई संशय नहीं कि जापान धुरी राष्ट्रों की उस मण्डली में शामिल था जिसका चिंतन फासीवाद से आप्लावित था । इसके बावजूद एक सवाल तो यह है ही कि क्या उस समय जापानी जनता भी वही चाहती थी जो उसके शासक चाहते थे । अगर नहीं तो उस नगर पर बम गिराने का क्या औचित्य था जहाँ बेकसूर जनता रहती थी । दुष्यंत कुमार का युद्ध के प्रति यह चिंतन मानवता के प्रति एक कवि की प्रतिबद्धता एवं संवेदनशीलता को पूरी तरह स्पष्ट कर देता है । काव्य–नाटिका में एक पात्र है 'सर्वहत'। सर्वहत नामक यह पात्र बाद में काव्य–नाटिका में समाविष्ट हुआ जो अनायास ही उभरकर आधुनिक प्रजा का प्रतीक बन गया । दरअसल यह सर्वहत उस सर्वहारा वर्ग का ही प्रतिनिधि है जो हर जगह उपेक्षित रहता है । सर्वहत कहता है–

"मैं सुनता हूँ ...
मैं सब कुछ सुनता हूँ
सुनता ही रहता हूँ
देख नहीं सकता हूँ
सोच नहीं सकता हूँ
और सोचना मेरा काम नहीं है ।
उससे मुझे लाभ क्या ...
मुझको तो आदेश चाहिए
मैं तो शासक नहीं
प्रजा हूँ
मात्र भृत्य हूँ
इसीलिए केवल सुनना मेरा स्वभाव है ।"[4]

आज भी जनता की यही स्थिति है । वह मूकद्रष्टा की भूमिका में होती है । जनता के सेवक के नाम पर शासन करने वाले नेता और नौकरशाह अपने को अधिनायक समझने लगते हैं । लोकतंत्र भी आज महज़ एक मज़ाक़ बनकर रह गया है । वंशवाद, परिवारवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद से आज सभी दल आप्लावित हैं ।

नेताओं का अपने को प्रतिनिधि कहने वाले नेता आख़िर आज क्या कर रहे हैं । दुर्भाग्यवश पुराने राजाओं–महाराजाओं की अनुकृति बनकर ही रह गए हैं । जनता इन प्रतिनिधियों के ग़लत निर्णयों की चक्की में अनवरत पिसती रहती है । एक जगह सर्वहत कहता भी है–

"क्या बच्चों–सी बातें करते हैं आप लोग ।
आप लोग शासक हैं
और शासकों को कहीं
रक्त की कमी हुआ करती है ।
आप लोग चाहें तो मेरे लिए रक्त का समुंदर भर सकते हैं ।
–पर मैं समझता हूँ
मुझको बहलाते हैं आप लोग ।
आप लोग मुझसे हैं असंतुष्ट
अप्रसन्न ।
आप नहीं
सभी लोग
... सभी मुझे देखकर घृणा से थूक देते हैं
मुझे मार डालने के लिए लपकते हैं ।
पर मेरा दोष क्या है?"[5]

परंपरा हमें इतनी प्रिय लगने लगती है कि हम इन्हें ढोते रहने में तनिक भी असहजता महसूस नहीं करते। "हमारे चिंतक, बुद्धिजीवी और नेता तक परंपराओं, मान्यताओं और विचारों की लाशें ही ढोते रहने में गौरव महसूस करते हैं । ऐसा करने वाले ख़ुद ही यह नहीं समझ पाते कि परम्पराओं की लाशें ढोने वाले ख़ुद भी तो लाशें बन जाते हैं ।"[6] अतः परिवर्तन का विष पीना और पचाना सरल कहाँ होता है । यह कोई साधारण कार्य भी नहीं होता । आम तौर पर नये सत्य के सम्मुख पड़ने या नये प्रश्नों से जूझने का साहस हममें नहीं होता । लेकिन समय अपनी गति से अनवरत प्रवहमान रहता है और जो भी कोई समय के साथ नहीं चलता समय उसे बड़ी बेरहमी से कूड़ेदान में फेंक देता है ।

निष्कर्ष :–

'एक कण्ठ विषपायी' समग्र रूप से इसलिए एक महत्त्वपूर्ण काव्य– नाटिका बन पड़ी है कि इसमें अपने समय की समस्याओं से जूझने और टकराने का साहस–दुस्साहस मौजूद है । इसमें युग के सत्यों को जिस बेबाकी से उद्घाटित किया गया है उससे रचनाकार को सृजन का सुख मिला है इसमें कोई संशय नहीं । वह सृजन–सुख जो अपने आप में तमाम पीड़ाओं से भरा हुआ है लेकिन जो अंतिम रूप में किसी भी रचनाकार के लिए एक उपलब्ध होता है । शिव–सती प्रसंग को आधार बनाकर लिखी गई इस गीति–नाटिका में दुष्यंत कुमार ने बड़ी बेबाकी से कई ऐसे प्रसंगों को उठाया है जो हमारे समय में प्रासंगिक हैं ।

संदर्भ ग्रंथ :–

1) दुष्यंत कुमार, एक कण्ठ विषपायी, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद, प्रथम.सं.2013, पृ.12
2) वही, पृ.45
3) वही, पृ.81
4) वही, पृ.111
5) वही, पृ.116
6) वही, पृ.132

'जंगल के जुगनू' उपन्यास में नारी विमर्श

*** रघुनाथ विट्ठल मोरे**

शोधार्थी

हिंदी अनुसंधान केंद्र,

म.स.गा. महाविद्यालय, मालेगाव कॅम्प,

मालेगाव, जिल्हा नाशिक.

मोबाईल : 9767141475

ई–मेल : rvmore89@gmail.com

**** प्रो. डॉ अनीता नेरे**

शोध निर्देशक

हिंदी अनुसंधान केंद्र,

म.स.गा. महाविद्यालय, मालेगाव कॅम्प

मालेगाव, जिल्हा नाशिक

मोबाईल : 9404556342

ई–मेल : anitanere321@gmail.com

शोधसार:–

'जंगल के जुगनू' उपन्यास के रचनाकार देवेश ठाकुर एक लोकप्रिय उपन्यासकार हैं उन्होंने हमेशा ऐसे विषयों पर लेखन कार्य किया है जिससे समाज में एक नई चेतना और ऊर्जा का संचार होता है, आज मैंने 'जंगल के जुगनू' उपन्यास में नारी विमर्श पर आधारित शोध निबंध प्रस्तुत करने चेष्टा की है । शोध निबंध में समाज सेवा से प्रेरित डॉ. देवांगी तथा डॉ. पलक शिव शंकरन नामक दो महिलाओं की कहानी प्रस्तुत की है । यह दोनों महिलाएं अपने जीवन संघर्ष के बावजूद समाज में प्रकाश फैलाने का काम करती है । और अपने आप को सिर्फ 'जंगल के जुगनू' की भाती समझती हैं, उनका बड़प्पन प्रस्तुत शोध निबंध में दिखाई देगा ।

प्रस्तावना:–

डॉ. देवांगी गांधी कॉलेज में लिट्रेचर,तो डॉ. फलक शिवशंकरण सेकसरिया कॉलेज में केमिस्ट्री की प्रोफेसर हैं । दोनों ही अपने व्यक्तिगत जीवन में अपेक्षित तथा टूटी हुई हैं । अपने से ज्यादा दुखियों के दुखों को काम करने की कोशिश करते हुए वह समाज सेवा में जुड़ जाती हैं । डॉ. देवांगी ने 'सहयोग' नामक एक संस्था की स्थापना की है, जिसके माध्यम से वह कांदिवली के पास होने वाली गांधीनगर की झोपड़पटीयों में रहने वाले गरीब महिलाओं की पीड़ाओं को दूर करने के लिए एक संगठन बनती है । कितनी ही विधवा तथा परित्यक्ता स्त्रियों को वह आसपास की बिल्डिंगों में घरेलू काम दिलवाती है । देवांगी जी की प्रेरणा से दो

डॉक्टर बारी–बारी से बस्ती में आती हैं और इन महिलाओं की छोटी–छोटी बीमारियों का इलाज करते हुए उन्हें मुक्त में दवाइयां बांटती हैं तथा गंभीर मरीजों का कारपोरेशन के अस्पतालों में दाखिल करवाती हैं । कलेक्टर संस्था के नाम जमीन लेकर वह गांधीनगर में लड़कियों के लिए एक स्कूल खोलने में प्रयत्नशील रहती है ।

डॉ. पलक शिवशंकरण भी देवांगी जी से प्रभावित होकर समाज सेवा की और अपना कदम बढ़ाती है । वह अपनी बड़ी बहन को अपना गॉडफादर मानते हुए वह बड़ी लगन से उनसे जुड़ी रहती है तथा अपनी ओर से दुखियों की सेवा में लगी रहती है । देवांगी जी के साथ रहकर वह अपनी कमजोरियों को कम करती है साथी समाज की ओर देखने का नया दृष्टिकोण पाती है । देवांगी की बीमारी तथा अंतिम दिनों में वह हमेशा उनके साथ खड़ी रहती है । उनकी मृत्यु के बाद सहयोग की जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठाती है तथा देवांगी के अधूरे सपने को पूरा करने में हर समय प्रयास करती है । संख्या के लिए आर्थिक मदद के लिए वह कितने ही लोगों के पास जाकर उन्हें अपनी योजना बताकर उनसे सहयोग प्राप्त करती है । इस बीच उन्हें अनेक अच्छे बुरे अनुभव से गुजरना पड़ता है । फिर भी वह अपना हौसला बुलंद रखती है, और पूरी लगन से अपने आप को समाज सेवा में जुट जाती है । वह कॉलेज में पढ़ने वाली कई लड़कियों की भी मदद लेती है ।

मुख्य शब्द

समाज सेवा, गांधीनगर, संगठन, सहयोग, अपेक्षित, परित्यक्ता, विधवा, कॉरपोरेशन, ननिहाल.

परिकल्पना:–

1. महानगरीय विमर्श और नारी विमर्श एक साथ समाज के सामने लाना।
2. पूर्ण शिक्षित नारी की समस्या ।
3. समाज सेवा में आत्मीय संतोष की खोज ।

संशोधन पद्धति :–

शोध निबंध में उपन्यास पढ़कर इसका विवेचन समीक्षात्मक शोध पद्धति से किया गया है । उपन्यास में बड़े बाप की बिगड़ी औलाद और उसके परिणाम दिखाई देते हैं । यह उपन्यास पूर्व दीप्ति तथा डायरी शैली में लिखा गया है ।

डॉ. पलक शिवशंकरन् :

कथानायिका डॉ. पलक शिवशंकरनू सेक्सरिया कॉलेज में कैमिस्ट्री विभाग की हेड के रूप में कार्यरत हैं । पिछले ३६ सालों से वह पढ़ाने का काम कर रही है । जीवन की ५८ वर्ष की इस यात्रा में उन्हें कितने ही अभाव, कितने ही अपमान, उपेक्षाएं तथा अकेलेपन को सहन करना पड़ा था । इसी बीच वह डॉ. देवांगी के संपर्क में आती हैं और 'सहयोग' संस्था के माध्यम से गांधीनगर की झोपडपट्टियों में रहने वाले गरीब लोगों की सहायता करने में जुट जाती है । 'सहयोग' संस्था ने मानो उनके एकाकी जीवन में सद्भावना का एक हाथ आगे बढाया था, जिससे उनके जीवन का अंधेरा थोडा–सा नष्ट होकर उसमें उजाला फैल गया था । ऐसे में जब उन्हें संकल्प प्रतिष्ठान, कोल्हापुर की ओर से उनके सामाजिक कार्यों के लिए 'महाराष्ट्र मनीषा' पुरस्कार से सम्मानित किया गया, तब उन्हें लगता है कि उनका जीवन सार्थक हो गया ।

डॉ. पलक का ननिहाल तिरची में था । इसी छोटे–से शांत कस्बे में यह अपनी छोटी बहन सब्बू के साथ बड़ी हो गयी थीं। उसकी मां बरसों पहले अपने मामा के पास मुंबई आ गई थी । मामा ने ही म्युनिसिपैलिटी के एक स्कूल में उसे नौकरी दिलायी थी । पिताजी अप्पा तो पहले से ही मुंबई में रहते थे । वे एक मिल में मैकेनिक थे । मामा की कोशिशों से ही मां की शादी अप्पा से हो गई थी । लेकिन उनका वैवाहिक जीवन बिल्कुल अच्छा नहीं रहा। मां के घमंडी स्वभाव के कारण अप्पा को बार–बार अपमानित होना पडता था । उसे अपने भाइयों पर बडा गर्व था क्योंकि वे अच्छी पोस्ट पर नौकरियाँ कर रहे थे । माँ पिताजी से

ज्यादा कमाती थी । इस कारण वह उन्हें बार–बार ताने मारती रहती थी । मां ने उनके जीवन को मानो नरक बना दिया था । केवल कहने के लिए ही वे जिंदा हैं । शादी के बाद पहले दिन से ही उनमें संघर्ष हो रहा था । दोनों की सोच कभी भी एक–दूसरे से नहीं मिल सकी। मिल की नौकरी छूटने पर पिताजी को अक्सर मां की गालियां सुननी पड़ती थी । लेकिन फिर भी पिताजी सब कुछ सहन कर लेते थे । अपने से जितना बनता था, उतना वे कर देते थे । मिल से कर्जा उठाकर उन्होंने बब्बो की शादी करा दी थी । अनेक ओगों हाथ–पैर पकड़कर उन्होंने ही बब्बो को मद्रास कारपोरेशन के स्कूल में नौकरी दिलायी थी । मां की बातों से तंग आकर वे मद्रास जाकर बब्बो के पास रहने लगते हैं ।

बडी बहन बब्बो की शादी उसके छोटे मामा के साथ मद्रास में हो गई थी । शादी के समय वह केवल पंद्रह–सोलह साल की थी । इस शादी के बाद ही मां पलक तथा सब्बू को अपने पास मुंबई बुलाती है । तब पलक ने आठवीं, तो सब्बू ने पांचवी पास कर ली थी । तिरची के एक छोटे से मुहल्ले से उठकर दोनों बहनें मुंबई के विस्तार में पूरी तरह से खो जाती हैं । अंधेरी की चाल के एक अंधेरे कमरे में पलक बडी घुटन का अनुभव करती थी । उसे बार–बार तिरची का खुलापन, अपने साथी तथा मौसी की याद आ जाती । मां और मौसी–दोनों के स्वभाव एकदम भिन्न थे । कॉरपोरेशन के स्कूल में टीचर होने के कारण मां घर में भी स्कूल जैसा अनुशासन चाहती थी । हर बात में वह टोकती रहती थी और हमेशा आदेश देती थी । लेकिन मौसी कभी भी बच्चों को नहीं डाँटती थी । विधवा और निःसंतान होने पर भी बहन के बच्चों से बहुत प्रेम करती थी । फिर भी, एम. एसस्सी की पढाई पूरी होने तक पलक अपनी मां के साथ वहीं पर रहती है ।

डॉ. पलक शुभम् के साथ विवाह बंधन में बंधती है लेकिन केवल पांच वर्ष के अल्पसमय में ही उनका वैवाहिक जीवन पूरी तरह से टूटकर बिखर जाता है । सरदर्द से परेशान होकर शुभम् ऑफिस से जल्दी घर लौटता है और सरदर्द से छुटकारा पाने के लिए एक एग्रीन की गोली खाकर सो जाता है । लेकिन वह बाद में जाग ही नहीं पाता है, हमेशा के लिए सो जाता है । शुभम् की अचानक हुई इस मृत्यु से पलक का पूरा जीवन ध्वस्त हो जाता है । अभी–अभी उसने अपनी जिंदगी की शुरुआत की थी, तभी सब कुछ उलट–पुलट हो गया था । बेटा श्रीराम तब मुश्किल से तीन साल का रहा होगा । पलक के पेट में राज्यश्री पल रही थी । इतनी बडी दुनिया में वह अकेली पड गयी । कहने के लिए माँ–बाप तथा बहनें थीं, परंतु सभी अपने–अपने कामों में उलझे हुए थे । शादी के बाद पलक अपने पति के साथ किराए के फ्लैट में रहने लगी थी । फ्लैट का मालिक उसके अकेलेपन का फायदा उठाने का भी प्रयास करता था । ठीक इसी समय देवांगी दीदी ने पलक के जीवन में प्रवेश किया और उसे समाजसेवा की ओर मोड दिया।

पलक ने शादी से पहले ही अपनी पीएच. डी. पूरी की थी । उसके पिताजी अप्पा बब्बो के पास मद्रास चले गए थे । अब अंधेरी की चाल के कमरे में सब्बू मां के साथ रहती थी । मां की नौकरी का अंतिम साथ चल रहा था । तभी कॉरपोरेशन ने अपने स्टाफ के लिए घाटकोपर में एक कालोनी बनवाई। शुभम् ने मां से भी ऑप्लिकेशन भरवा दिया था । संयोग से लॉटरी में मां का नंबर निकल आता है । लेकिन इसके लिए कॉरपोरेशन को चालीस हजार रूपये पहले देने थे । मां दस हजार से ज्यादा देने के लिए तैयार नहीं थी । शुभम् ने अपने ऑफिस से किसी तरह तीस हजार का इंतजाम किया और मां के नाम पर फ्लैट ले लिया। दुर्भाग्य से फ्लैट का कब्जा मिलने से पहले ही शुभम् इस दुनिया को छोड़कर चला जाता है । पलक ने सोचा था कि उसकी मां तथा मौसी उनके साथ इस नये फ्लैट में रहेंगी। वे दोनों उनके बच्चों की देखभाल भी कर लेंगी परंतु उसका सारी प्लानिंग चौपट हो जाती है । फ्लैट तैयार होने के बाद मां, मौसी और सब्बू नये फ्लैट में रहने लगती हैं । पलक भी उसी फ्लैट में शिफ्ट होती है । यहीं पर उसकी दूसरी बेटी राज्यश्री का जन्म होता है ।

वास्तव में फ़्लैट की लगभग सारी रकम खुद पलक ने ही भरी थी, केवल दस हजार उसकी मां के थे । परंतु मां के नाम पर फ़्लैट होने के कारण वह लोगों को बताती थी कि यह मेरा ही फ़्लैट है । बेचारी पलक को मैं यहां अपने पास लेकर आयी हूँ। यह सुनकर पलक को बडा दु:ख होता था । वह यह भी बताती थी कि इस फ़्लैट का नॉमिनेशन भी मैंने पलक के ही नाम कर दिया है । लेकिन बाद में नॉमिनेशन में पलक के नाम के साथ अन्य दानों बहनों का नाम भी डाल दिया जाता है । बास्तव में दोनों बहनों का इस फ़्लैट से कोई संबंध नहीं था । मां की मृत्यु के बाद दोनों बहनों को समझाकर पलक फ़्लैट को अपने नाम करवा देती है । पलक अपने माता–पिता से असीम प्रेम करती है । इसी कारण ही तीनों बहनें मिलकर अपनी अम्मा–अप्पा की शादी की पचासवीं सालगिरह शादी की गोल्डन जुबली मनाती हैं ।

पलक ने ही स्वयं पैसों का जुगाड करते हुए अपनी छोटी बहन सब्बू की शादी करा दी थी । उसका पति राजन फोटोग्राफर था । शादी के बाद सब्बू अपने पति राजन के साथ एन–टॉप हिल के फ़्लैट पर अपने ससुराल चली जाती है । वास्तव में सब्बू मां की बड़ी लड़की थी । मीठी–मीठी बातें बनाकर वह मां से अपना काम निकालती थी । शादी के समय वह मां को पटाती है और उससे कुछ भारी गहने प्राप्त करती है । तीनों बहनों में वह बड़ी चालाक और केलकुलेटिव थी । शादी के बाद भी वह मां–पिताजी से अच्छे संबंध बनाए रखती है, ताकि समय आने पर वे उसकी मदद कर सकें। अपने नये फ़्लैट के लिए वह मां से एक लाख से भी ज्यादा रूपये प्राप्त कर लेती है । पहला बच्चा होने पर वह पिताजी को मद्रास से अपने पास बुला लेती है और उन्हें घर तथा बच्चे की रखवाली की जिम्मेदारी सौंपती है ।

डॉ. पलक एक ओर अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियां निभाती हैं, तो दूसरी ओर समाजसेवा में लगी रहती हैं । देवांगी से उसने समाज की ओर देखने का एक नया दृष्टिकोण प्राप्त किया था । देवांगीजी से प्रभावित होकर ही वह समाजसेवा की ओर अग्रसर हुई थीं। उन्हें अपनी बडी बहन मानते हुए पलक बड़ी लगन से उनसे जुडी रहती तथा अपनी ओर से दुखियों की सेवा में लगी रहती। देवांगी के निकट संपर्क से वह अपनी कमजोरियों को कम करती है । देवांगी की बीमारी तथा उनके अंतिम दिनों में वह हमेशा उनके साथ रहती है तथा उनकी हर संभव मदद करती है । उनकी मृत्यु के बाद वह 'सहयोग' की पूरी जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठाती है तथा देवांगी के अधूरे सपने को पूरा करने में प्रयत्नशील रहती है । संस्था के लिए आर्थिक मदद मांगने के लिए वह कितने ही लोगों के पास पहुंचती है तथा अपनी योजना बताकर उनसे आर्थिक सहयोग प्राप्त कर लेती है । इसी बीच उन्हें अनेक अच्छे–बुरे अनुभवों से गुजरना पड़ता है । फिर भी वह हिम्मत नहीं हारती है और पूरी लगन से समाज की सेवा में जुट जाती है । इसके लिए वह कॉलेज में पढने वाली कई लड़कियों की भी मदद लेती है । उसके इस समाजकार्य के लिए उसे संकल्प प्रतिष्ठान, कोल्हापुर इस संस्था के द्वारा 'महाराष्ट्र मनीषा' पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है ।

2. डॉ. देवांगी :

डॉ. देवांगी शहर के उच्च वर्गीय व्यवसायी की इकलौती बेटी है । घर में नौकर–चाकर थे, पढाई तथा नृत्य के लिए घर में टीचर आते थे । किसी भी बात की कोई कमी नहीं थी । केवल एक मां की कमी थी, जो देवांगी को जन्म देकर साल भर बाद चल बसी थी । बहुत मन्नत के बाद पैदा होने के कारण ही उसे देवांगी नाम दिया गया था । बेटी के पालन–पोषण की चिंता के कारण पिताजी ने दूसरी शादी नहीं की थी । देवांगी की कॉलेज की जिंदगी भी बहुत मजे में कटी थी । एम. ए. की पढाई तक अक्सर वह पहला अथवा दूसरा स्थान पाती थी । कभी–कभी सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी भाग लेती थी । अपनी सहेलियों के बीच वह बहुत लोकप्रिय थी । बी. ए. के फाइनल इयर की पढाई के दौरान कॉलेज के वार्षिक समारोह में उसने हनुमंत नायडु की एक गजल गाई थी, जिसे सुनकर कॉलेज के ट्रस्टी सूरजभान बाफना बडे प्रभावित होते हैं और अपने इकलौते बेटे अशोक के लिए उसका हाथ मांगते हैं । सूरजभान जी कई मिलों के मालिक थे । उनके कई व्यवसाय थे । उनका बेटा अशोक उसी साल अमेरिका

से बिजनेस मैनेजमेंट की डिग्री लेकर लौटा था । देवांगी को देखते ही वह भी उस पर मोहित हो जाता है । लेकिन देवांगी एम. ए. पूरा होने से पहले शादी के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थी । उसके पापा भी इतने अमीर घराने में बेटी की शादी नहीं करना चाहते थे । लेकिन पिता–पुत्र की जिद के कारण पिताजी कुछ भी नहीं कर पाते हैं और शादी के लिए तैयार हो जाते हैं । वे सोचते हैं कि अशोक भी उसके पिताजी के समान ही शालीन और सद्विचारों वाला होगा । धीरे–धीरे देवांगी भी अशोक को पसंद करने लगती है और कुछ ही दिनों में दोनों की शादी करा दी जाती है ।

लेकिन शादी के बाद उनका मोह–भंग हो जाता है । अशोक की असलियत धीरे–धीरे सामने आने लगती है । वह बाहर से जितना शालीन और सभ्य लगता था, भीतर से उतना ही कठोर और कामुक था । वह केवल देवांगी के शरीर से प्रेम करता था । मानो एक खिलौना, जिससे वह जब चाहे खेल सकता था । बाद में पता चलता है कि दूसरी औरतों के साथ भी उसके संबंध थे । रोज़ नामक एक अमेरिकन लडकी से उसने शादी की थी और बाद में डाइवोर्स भी ले लिया था । रोज़ ने एक बच्चे को भी जन्म दे दिया था । इन सारी बातों से देवांगी बहुत ही डिस्टर्ब रहने लगती है । सूरजभानजी सोचते थे कि देवांगी जैसी सुसंस्कारी लडकी से शादी होने के बाद अशोक सुधर जाएगा, परंतु ऐसा नहीं हो सका। इससे वे बडे दुखी होते हैं । उन्हें लगता है कि उनके कारण ही देवांगी जैसी लडकी पर कितना बडा अन्याय हुआ है । अंत में हार कर उन्होंने अशोक को अपनी संपत्ति से बेदखल कर दिया और सारी संपत्ति देवांगी के नाम करा दी देवांगी को वे समझाते हैं कि मैंने एक बेटा खो दिया है, लेकिन बदले में एक सुशील बेटी को प्राप्त कर लिया है । सूरजभानजी की प्रेरणा से ही देवांगी 'सहयोग' नाम की संस्था स्थापित करती है और दुखियों की सेवा में अपना मन लगाती है ।

अशोक को तो घर से निकाल दिया गया, लेकिन उसका बेटा देवांगी के पेट में पल रहा था । सूरजभान देवांगी को सलाह देते हैं कि वह इस गर्भ को गिरा दे। क्योंकि भविष्य में उनकी मृत्यु के बाद अशोक फिर वापस लौटेगा और अपनी संतान के बहाने देवांगी को तंग करेगा। अपने बदमाश बेटे की कोई भी निशानी वे अपने घर में रखना नहीं चाहते थे । लेकिन देवांगी इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं होती है । बाबूजी की मर्जी के खिलाफ बह सुहास नामक बेटे को जन्म दे देती है । सूरजभानजी का गुस्सा अब भी ठंडा नहीं हुआ था । वे देवांगी को बताते हैं कि अशोक के बेटे को वह कभी भी उनके सामने न ले आये। क्योंकि उस बच्चे में उन्हें अशोक का ही चेहरा दिखाई देता है । लेकिन अपने अंतिम दिनों में बाबूजी सुहास को बड़े प्रेम से अपने पास सुलाते है और खुद हमेशा के लिए सो जाते हैं । इसी बीच डॉ. देवांगी की डॉ. बिज्ञीय घोष से मुलाकात हो जाती है । छोटे गुहास की बीमारी का इलाज करने के लिए यह डॉ. घोष के क्लिनिक में चली जाती थी । बातों–बातों में उन्हें पता चलता है कि डॉ. देवांगी शहर के विख्यात व्यवसायी सूरजभान की पुत्र–वधू है । स्वयं ही घोष ने 'सूरजभान चारिटेबल ट्रस्ट' द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से ही अपनी डॉक्टरी की पढाई पूरी की थी । अतः सूरजभान जी के प्रति उनके मन में बड़ी सम्मान की भावना थी । वे देवांगी को बताते हैं कि अब सुहास को दिखाने के लिए तुम्हें क्लिनिक में आने की कोई जरूरत नहीं है । वे खुद देवांगी के बंगले पर आकर सुहास की बीमारी का इलाज करेंगे । तब से देवांगी के बंगले पर उनका आना–जाना शुरू हो जाता है । सुहास की जाँच–परख के बाद वे देर तक बाबूजी के पास बैठकर इधर–उधर की बातें करते रहते ।

धीरे–धीरे दोनों एक–दूसरे के निकट आने लगे । दोनों साथ–साथ बाहर भी जाने लगे । कभी थियेटर में तो कभी सेमिनार में ये दोनों साथ चले जाते । डॉ घोष की निकटता देवांगी को भी अच्छी लगने लगी थी । कभी–कभी देवांगी को लगता कि क्या उसका यह आचरण ठीक है? बाद में उसे लगता कि उसकी जिंदगी उसकी अपनी जिंदगी है । उसे वह चाहे जैसे जी सकती है । सुहास तथा बाबूजी उसके जीवन के अकेलेपन को नहीं भर सकते हैं । डॉ. घोष अगर उसके अकेलेपन को कम कर सकते हैं, तो उनके साथ संबंध रखने में क्या बुराई है? लेकिन एक दिन डॉ. घोष देवांगी को बताते हैं कि उसका पति अशोक उन्हें

बार–बार धमकी भरे पत्र लिखता है । देवांगी के साथ उनका घूमना–फिरना उसे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है । यह सुनकर देवांगी सोचती है कि अशोक कुछ भी कर सकता है । उसके कारण डॉ. धोष की जान को खतरा भी हो सकता है । और यह वह कभी भी सहन नहीं कर सकती है । इसके बाद दोनों का मिलना–जुलना लगभग बंद हो जाता है ।

डॉ. देवांगी फिर से अकेली पड़ जाती है । वह अक्सर बीमार पड़ने लगती है । टाटा हॉस्पिटल में जब वह अपनी जाँच करवाती है, तब पता चलता है कि उसे ब्लड कैंसर है । अब यर्ड स्टेज चल रही है । डॉक्टर ने उसे अस्पताल में दाखिल होने की सलाह दी थी । परंतु देवांगी अपने घर पर ही शांति से मरना चाहती है । इस कारण अस्पताल जाने से मना कर देती है । वह अपनी 'सहयोग' संस्था की सारी फाईले डॉ. पलक को सौंप देती है और खुद मृत्यु को गले लगाती है । मृत्यु के समय उसके चेहरे पर शांति की एक अपूर्व आभा थी । उसके अंतिम दर्शन के लिए बंगले के सामने गांधीनगर के हजारों झोपडपट्टिवाले इकट्ठा होकर 'देवांगी दी अमर रहे' के नारे लगा रहे थे । सचमुब, देवांगीजी ने अपना जीवन केवल जीया नहीं था, तो उसे रचा था । जिंदगी तो सभी जीते हैं, लेकिन उसे रचता कोई बिरला ही है । जीवन को रचा जाना ही उसे सार्थक बनाता है । अपने जीवन को सार्थक बनाकर वह हमेशा के लिए चली गई थी । लेकिन जाने से पहले उसने अपनी कितनी ही छात्राओं में समाज सेवा की ज्योत जलाई थी । डॉ. पलक भी देवांगी जी से प्रभावित होकर समाज सेवा की ओर अग्रसर हुई थीं । पलक को अपनी छोटी बहन मानकर देवांगी जी उसमें होने वाली कमजोरियों को कम करती है तथा उसे समाज की ओर देखने का एक नया दृष्टिकोण प्रदान करती है । अपने अंतिम दिनों में वह 'सहयोग' संस्था की पूरी जिम्मेदारी पलक को सौंपती है और इस दुनिया से हमेशा के लिए विदा लेती है ।

निष्कर्ष

आज समाज में ऐसी विपरीत अवस्था है कुछ चंद समाज सुधारक भला क्या कर सकते हैं, ऐसा प्रश्न चिन्ह समाज के सामने खड़ा है भले ही वे समाज की सेवा के लिए अपना तन, मन और धन सब कुछ अर्पित कर देते हैं, फिर भी उनकी अपनी मर्यादा है । देश के सारे गरीबों तक तो वह नहीं पहुंच सकते। वह गरीबों के जीवन में उजाला फैलाना चाहते हैं, परंतु वे तो केवल एक टिम टिम करने वाले जुगनू है ।

संदर्भ

जंगल के जुगनू उपन्यास : देवेश ठाकुर

समकालीन कहानी : समसामयिक सामाजिक यथार्थ

डॉ. लूनेश कुमार वर्मा (व्याख्याता)
शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय छछानपैरी
विकास खंड–अभनपुर, जिला रायपुर (छत्तीसगढ़)
मो. 8109249517
luneshverma@gmail.com

सारांश– समकालीन कहानियों में तत्कालीन विविध संदर्भों एवं मुद्दों के आधार पर परिवर्तित हो रहे समाज की संरचना का मार्मिक व रोचक चित्रण किया गया है । प्रगतिशील कहानीकारों ने सामाजिक यथार्थ को केंद्र में रखकर यथार्थ जीवन के अनछुए पहलुओं पर गाँव, देहात, कस्बे, नगर, महानगर और दूरस्थ अंचलों के जीवन संदर्भों पर अत्यंत मार्मिक और प्रभावशाली कहानियाँ लिखी हैं । बाजारवाद, भूमंडलीकरण एवं पूँजीवाद के कारण निम्न मध्यमवर्गीय आदमी का जीवन हास्यास्पद हो गया है । उपभोक्तावादी संस्कृति में व्यक्ति के स्थान पर वस्तु महत्वपूर्ण हो जाती है । समकालीन कहानीकारों की कहानियों में समकालीन जीवन प्रवाह को नियंत्रित करने वाली व्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हुए उनकी कमजोरियों को उजागर करती हैं । कहानियों में व्यवस्था के प्रति असंतोष व विद्रोह का स्वर प्रमुखता से उभरा है ।

मुख्य शब्द– समकालीन कहानी, सामाजिक यथार्थ, बाजारवाद, भूमंडलीकरण, पूँजीवाद, उपभोक्तावाद, विद्रोह का स्वर ।

समकालीन कहानियों में तत्कालीन विविध संदर्भों एवं मुद्दों के आधार पर परिवर्तित हो रहे समाज की संरचना का मार्मिक व रोचक चित्रण किया गया है । इसके साथ ही कहानी की संरचना में हो रहे परिवर्तन को समसामयिक सामाजिक यथार्थ को रचनात्मक रूप दिया गया है । विविध तकनीकों के कारण आम आदमी का जीवन तेजी से बदल रहा है, ऐसे में समाज और आम आदमी के जीवन की जटिलताओं को इस समय की कहानियों में, नए शिल्प में, कथात्मक रूप में अभिव्यक्त किया गया है । समाज की बदलती हुई संरचना को कथा में सार्थक अभिव्यक्ति देने के लिए विविध सूचनाओं, घटनाओं, आंकड़ों, सर्वेक्षणों आदि का उपयोग करते हुए कहानी को आकार दिया गया है ।

प्रगतिशील कहानीकारों ने सामाजिक यथार्थ को केंद्र में रखकर यथार्थ जीवन के अनछुए पहलुओं पर गाँव, देहात, कस्बे, नगर, महानगर और दूरस्थ अंचलों के जीवन संदर्भों पर अत्यंत मार्मिक और प्रभावशाली कहानियाँ लिखी हैं । उदय प्रकाश की 'तिरिछ', 'छप्पन तोले का करधन', '...और अंत में प्रार्थना' और स्वयं प्रकाश की 'बर्डे' कहानियों में सामाजिक यथार्थ का नया स्वरूप देखने को मिलता है ।

समकालीन हिंदी कहानी में समकालीन स्थितियों का व्यापक चित्रण किया गया है । बाजारवाद, भूमंडलीकरण एवं पूँजीवाद के कारण निम्न मध्यमवर्गीय आदमी का जीवन हास्यास्पद हो गया है । समकालीन कहानी में उदय प्रकाश की तिरिछ, राम सजीवन की प्रेम कथा, पॉल गोमरा का स्कूटर, पीली छतरी वाली लड़की, संजीव की अपराध आदि कहानियाँ प्रमुख हैं । सुरेंद्र चौधरी कहते हैं– "**दरिद्र–वंचित और बीमार अनुभव करने वाले कथानायकों की कमी उदय प्रकाश की कहानियों में नहीं है ।**"[1] उदय प्रकाश की कहानियों के प्रमुख पात्र समाज के दलित, दमित, वंचित वर्ग के हैं ।

समकालीन समय में उदय प्रकाश की प्रारंभिक कहानियों में 'टेपचू' व 'तिरिछ' अत्यंत महत्वपूर्ण व चर्चित कहानियाँ हैं। 'टेपचू' में जादूई यथार्थवाद का पहले पहल प्रयोग देखने को मिलता है। 'हीरालाल का भूत' कहानी के प्रमुख पात्र हीरालाल शोषित किसान वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है। इस कहानी में बंधुआ मजदूरी जैसी पुरातन प्रथा पर लेखक ने प्रहार किया है।

उपभोक्तावादी संस्कृति में व्यक्ति नहीं केवल और केवल उपभोक्ता महत्वपूर्ण होता है। इसमें व्यक्ति के स्थान पर वस्तु महत्वपूर्ण हो जाती है। इसका उद्देश्य विज्ञापन आदि के माध्यम से ग्राहकों का निर्माण कर जिस किसी प्रकार से लाभ प्राप्त करना होता है। इन्हीं भावनाओं को पंकज बिष्ट की कहानी 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते', उदय प्रकाश की कहानी 'पॉल गोमरा का स्कूटर' में रेखांकित किया गया है। 'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी का कथ्य–शिल्प दोनों बहुत ही महत्वपूर्ण है। आज के समय में लोग किस तरह से मतलब परस्त हो गए हैं। इसे व्यक्त करते हुए पॉल गोमरा का स्कूटर कहानी में लेखक कहते हैं– **"मैंने पहली बार तुमसे अपने किसी काम के लिए रुकने को कहा है और तुम इसमें भी बहाने बना रहे हो, जबकि तुम्हारे लिए मैं हर रोज एवरेज तीन–चार घंटे खाली बैठा रहता हूँ। जहाँ तुम्हारा मन आता है, तुम मेरा स्कूटर ले जाते हो, मैंने कभी मना नहीं किया...।"**[2] कहानी का नायक निम्न मध्यवर्गीय है। वह आज के उत्तर आधुनिक युग में बाजारवाद के चकाचौंध से आकर्षित हो न केवल अपना नाम अपितु अपना जीवन शैली बदलने के लिए उद्यत हो जाता है।

उदय प्रकाश प्रगतिशील कथाकार हैं। उदय प्रकाश की रचनाओं में मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति प्रभावशाली है। समकालीन समाज की स्थितियों का यथार्थ चित्रण उदय प्रकाश ने समाज से प्रतिबद्ध होकर अपनी रचनाओं में किया है। रचना में यथार्थ का महत्वपूर्ण स्थान होता है। उदय प्रकाश कहते हैं–''कोई भी महत्वपूर्ण रचना सिर्फ सामाजिक यथार्थ के शरीर और उसकी प्रत्यक्ष आवयविक बनावट को ही नहीं, बल्कि यथार्थ की आत्मा को भी अभिव्यक्त करती है।''[3] भूमंडलीकरण और बाजारवाद ऐसे कारण हैं, जिनके कारण व्यक्ति के स्वत्व, अस्तित्व नष्ट होने की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

समकालीन कहानीकारों की कहानियों में समकालीन जीवन प्रवाह को नियंत्रित करने वाली व्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हुए उनकी कमजोरियों को उजागर करती हैं। व्यवस्था के विविध क्षेत्रों जैसे– शासन–प्रशासन, न्याय, पुलिस, शिक्षा आदि क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार व विसंगतियों को उजागर करते हुए आम आदमी के मन में असंतोष की दहकती हुई भावनाओं को अपनी कहानियों के माध्यम से नई दिशा देने का प्रयास समकालीन कहानीकारों की कहानियों में हुआ है। इनकी कहानियों में आम आदमी के शोषण का यथार्थ चित्रण के साथ उनमें संघर्ष की शक्ति का संचार करने वाली ऊर्जा का भी समावेश निहित है।

समसामयिक समाज में गंभीर व घातक प्रभाव उत्पन्न करने वाले कारकों जैसे बेरोजगारी, असमानता, पूँजीवाद का चित्रण 'दुर्गंध', 'आवेदन करो', 'मोहन राम (दास) आखिर क्या हुआ', 'टुंड्रा प्रदेश', 'हल' जैसी कहानियों में किया गया है। बढ़ती हुई आबादी के कारण और लोगों की आपाधापी के कारण देश में यातायात व्यवस्था चरमरा जाती है। 'आवेदन करो' कहानी के माध्यम से पंकज बिष्ट कहते हैं– "देखते नहीं क्या, ट्रैफिक किस कदर जाम है? एक तो मर ही रहा है, क्या तुम चाहते हो, इन्हें एंबुलेंस कुचल दे? अरे, जब ट्रैफिक चलेगा एंबुलैंस भी आ जायेगी। अजीब बेवकूफ मिल जाते हैं।"[4] पंकज बिष्ट की कहानियों में आपातकाल के कारण जन जीवन में आए बदलाव, धीरे–धीरे गाँधीवादी विचारधाराओं व आदर्शों से बढ़ती हुई दूरी, उपभोक्तावाद के कारण उत्पन्न होने वाली त्रासदियों और सांप्रदायिकता के कारण उत्पन्न होने वाली जटिलताओं का समग्र चिंतन पंकज बिष्ट की कहानियों में समाहित हैं।

'खोखल' और 'कवायद' कहानियाँ पंकज बिष्ट के आपातकालीन त्रासद अनुभवों पर आधारित है। आपातकाल में भय व घुटन का वातावरण व्याप्त था। बलराज पांडेय कहते हैं– **"पंकज बिष्ट ने जनवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति फैंटेसी के माध्यम**

से दी है । 'खोखल' एक फैंटेसी है, जिसमें मानव मुक्ति के लिए पागल जैसे हो जाने वाले व्यक्ति का चित्रण किया गया है । मानव–मुक्ति के रास्ते में कौन–कौन से खतरे हैं तथा इस समय अभिव्यक्ति का संकट कितना गहरा होता जा रहा है, इसका लेखक ने प्रभावकारी ढंग से बयान किया है । लेखक का मानना है कि जीवन की सच्चाइयों से भागकर अधिक दिनों तक नहीं रहा जा सकता। एक–न–एक दिन उसका सामना करना ही होगा ।"[5] 'खोखल' कहानी में आपातकालीन इसी आतंक को चित्रित किया गया है । इस कहानी के नायक को ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोई उसका पीछा कर रहा हो। कहानी का नायक इस अनुभव से उबर नहीं पाता है ।

समकालीन कहानीकार जनवादी चेतना से युक्त रचनाकार हैं । वे प्रतिबद्ध कहानीकार हैं । इन कहानीकारों में अपने समय के आम आदमी के सामाजिक जीवन की सहज पहचान और यथार्थ की गहरी अनुभूतियाँ मिलती हैं । ये कहानीकार मानवीय संबंधों को लेकर विचारशील रहते हैं । ये अपने समय व समाज के प्रति प्रतिबद्ध रचनाकार हैं । अतः इनकी कहानियों में मानवीय संबंधों को विशेष महत्व देने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है । कहानियों में व्यवस्था के प्रति असंतोष व विद्रोह का स्वर प्रमुखता से उभरा है । भाषा आम आदमी की भाषा है । कहानियाँ सरल, सहज व बोधगम्य हैं ।

संजीव जनवादी विचारधारा के लेखक हैं । संजीव की लिखी कहानियों में नक्सलवाद पर आधारित 'अपराध' महत्वपूर्ण कहानी है । इस कहानी के विषय में बलराज पांडेय कहते हैं– "**अपराध कहानी पर नक्सलवाद का सीधा प्रभाव है, हालांकि यह एक बुद्धिजीवी के अपराधबोध और पश्चाताप की कहानी बन गई है । इस कहानी में जिस आक्रोश के साथ वर्तमान व्यवस्था पर प्रहार किया गया है, वह ज्यादा महत्वपूर्ण है ।"**[6] 'अपराध' कहानी के माध्यम से लेखक ने देश की न्याय व्यवस्था पर एक टिप्पणी की है ।

न्याय की आशा से लोग कचहरी आते हैं । न्याय व्यवस्था के मंदिर कचहरी में झूठ, फरेब और दलाली की गतिविधियों से लेखक उद्वेलित होता है । उन्हें लगता है अपराधी लोग ही यहाँ निरपराध को दंड देने का काम करते हैं । यहाँ की पुलिस, जज, कलेक्टर, मंत्री आदि वास्तविक अपराधी हैं, जो देश की जनता को विभिन्न रीतियों से लूटने का कार्य कर रहे हैं । लेखक को लगता है वास्तव में जिन्हें दंड मिलना चाहिए, वे सत्ता सुख भोग रहे हैं और न्याय के लिए आवाज उठाने वाले सचिन और संघमित्रा जैसे सामान्य लोगों को यातना दे–दे कर मार दिया जाता है । कहानी में समाज के तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग की सोच को भी लेखक रेखांकित करते चलते हैं ।

'अपराध' कहानी का प्रमुख पात्र सचिन अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करता है । लड़ते–लड़ते उसे फाँसी की सजा हो जाती है, लेकिन वह झुकता नहीं है । वह वीर व साहसी योद्धा की तरह अपने सिद्धांतों के मार्ग पर अडिग रहता है । कहानी में सचिन को दी जाने वाला फाँसी जन सामान्य के मन में वर्तमान व्यवस्था के प्रति आक्रोश उत्पन्न करती है । वह कहता है– "**मुझे इस पूँजीवादी, प्रतिक्रियावादी, न्यायव्यवस्था में विश्वास नहीं है । आम जनता भी जिसे न्याय का मंदिर कहती है, वह लुटेरे, पंडों और जूताचोरों से भरा पड़ा है । यहाँ आते ही चपरासी, अहलमद, नाजिर, पेशकार, कानूनगो से लेकर काला लबादा ओढ़े वकील और गीता तथा गंगाजल की कसमें खाकर झूठी गवाहियाँ देने वाले गवाह, ये तमाम कुत्ते नोचने–खसोटने लगते हैं उसे। यह लाल थाने, लाल जेलखाने और लाल कचहरियाँ... इन पर कितने बेकसूरों का खून पुता है । वकीलों और जजों का काला गाउन जाने कितने खून के धब्बों को छुपाए हुए हैं । परिवर्तन के महान रास्ते में एक मुकाम ऐसा भी आएगा जिस दिन इन्हें अपना चरित्र बदलना होगा, वरना इनकी रोबीली बुलंदियाँ धूल चाटती नजर आएँगी।"**[7] अदालत में जब सचिन को प्रस्तुत किया जाता है तब अदालत में दिया गया उसका बयान वर्तमान न्याय व्यवस्था का कच्चा चिट्ठा खोलता है ।

समकालीन समाज में जन्मदिन मनाने की परंपरा प्रचलित है । स्वयं प्रकाश की कहानी 'बर्डे' में पाश्चात्य संस्कृति के फलस्वरूप निम्न मध्यमवर्गीय परिवार में अपने पुत्र के दो जन्मदिन मनाने के भिन्न भिन्न प्रकार के अनुभवों का चित्रण किया गया है । कहानी में जब सुधीर फोर्समेंट इंस्पेक्टर था तब अपने पुत्र के जन्मदिन मनाने पर ढेरों और तरह–तरह के उपहारों से उनका घर भर गया था । स्वयं प्रकाश कहते हैं– **"यही बात है । यही बात है, जो हर साल महिलाओं को बच्चों की वर्षगांठ मनाने के लिए उत्साहित कर देती है । थकेंगी, खटेंगी, झुंझला लेंगी, सब कर लेंगी, लेकिन जब अपने व्यंजन दूसरों का खिलाएँगी और दूसरे वाह–वाह कर उठेंगे...कैसा सुख मिलता है । और खासकर जब वे मँहगे–मँहगे उपहार भी दे जा रहे हों!"**[8] स्वयं प्रकाश 'बर्डे' कहानी के माध्यम से निम्न मध्यवर्गीय समाज में लोगों की जन्मदिन मनाने की मानसिकता को स्पष्ट करते हैं । जब सुधीर इंस्पेक्टर की नौकरी छोड़ कॉलेज में लेक्चरर हो गया, तब अपने बच्चे के जन्मदिन मनाने पर बहुत ही छोटे–छोटे और मामूली उपहार प्राप्त हुए थे । छोटे–छोटे उपहारों को देखकर उसकी पत्नी श्रीमती बैजल के मनोभावों का बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण किया गया है ।

समकालीन कहानीकारों की कहानियों में मानवीय संबंधों को लेकर चिंता की रेखाएँ स्पष्ट देखी जा सकती हैं । तकनीक और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विकास के कारण आम आदमी के जनजीवन पर इन सब का व्यापक प्रभाव पड़ा है । फलतः इन रचनाकारों ने आम आदमी के जीवन में इन तकनीकों के कारण होने वाले प्रभाव–दुष्प्रभाव को रेखांकित किया है । समाज के प्रत्येक वंचित वर्ग के लोगों की पीड़ा व शोषण के विरुद्ध स्वर बुलंद किया गया है । इनकी कहानियों में समाज के प्रत्येक वंचित वर्ग जिसमें अनुसूचित जाति जनजाति दलित स्त्री आदि समाहित हैं । इनके प्रति पूरी सहानुभूति से इनका पक्ष लेते हुए पूरी संवेदना से इनकी पीड़ा और समस्याओं को अपनी रचनाओं के माध्यम से उठाया गया है ।

निष्कर्ष– समकालीन कहानियों में देश के सामान्य लोगों और उनके जीवन के संघर्ष, हर्ष–विषाद, उथल–पुथल और अत्यंत साधारण समझी जाने वाली स्थितियों–परिस्थितियों का जीवंत चित्रण व विश्लेषण सरलता व सहजता से किया गया है । समकालीन जीवन का विश्वसनीय चित्रण देखने को मिलता है । कहानियों में संरचना, रूप–शिल्प को लेकर विविध प्रयोग देखने को मिलते हैं । यह प्रयोग जटिल से जटिलतर होते जा रहे यथार्थ की पहचान व उसकी पुनर्रचना के लिए यथार्थ से जादुई यथार्थ तक की यात्रा के रूप में सामने आता है । समकालीन कहानियों में ग्राम्य जीवन का यथार्थ व जीवंत चित्रण हुआ है, कहानियाँ विचार प्रधान हैं । पात्रों में शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने की अदम्य जिजीविषा देखने को मिलती है । समकालीन कहानी का कथ्य संवेदना और शिल्प भिन्न प्रकृति का था । इन कहानियों में शिल्प का अभिनव प्रयोग देखने को मिलता है ।

संदर्भ ग्रंथ

1. चौधरी, सुरेंद्र. हिंदी कहानी: रचना और परिस्थिति. गाजियाबाद: अंकिता प्रकाशन. संस्करण: 1999.
2. उदय प्रकाश. पॉल गोमरा का स्कूटर. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. संस्करण: 2006.
3. उदय प्रकाश. ईश्वर की आँख. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. संस्करण: 2005.
4. बिष्ट, पंकज. बच्चे गवाह नहीं हो सकते. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन. संस्करण: 1986.
5. पांडेय, बलराज. कहानी आंदोलन की भूमिका. इलाहाबाद: अनामिका प्रकाशन. संस्करण: 1989.
6. पांडेय, बलराज. कहानी आंदोलन की भूमिका. इलाहाबाद: अनामिका प्रकाशन. संस्करण: 1989.
7. संजीव. शताब्दी की कालजयी कहानियाँ(खंड 4). संपादक– कमलेष्वर. नईदिल्ली: किताबघर प्रकाशन. संस्करण: 2010.
8. स्वयं प्रकाश. चर्चित कहानियाँ. नई दिल्ली: सामयिक प्रकाशन. संस्करण: 2005.

कृष्णा सोबती की कहानियों में विभाजन की पीड़ा

मोहम्मद रहबर

मलिक मो. ज़ुबैर अली

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,

अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़

शोध–सार

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी खासकर नयी कहानी के दौर में जिन लेखिकाओं ने अपनी रचनात्मक क्षमता से पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है । उनमें कृष्णा सोबती का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है । सोबती जी का रचना संसार काफी व्यापक है । उन्होंने हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर लिखा । सोबती जी का एक मात्र कहानी–संग्रह 'बदलो के घेरे' है । इस संग्रह की कहानियां में तीन पक्षों को देखा जा सकता है । प्रथम स्त्री–पुरुष प्रेम संबंधी, द्वितीय स्त्री की पीड़ा और तृतीय विभाजन की समस्या को देखा जा सकता है ।

इस संग्रह की तीन कहानियां भारत–पाक विभाजन की त्रासदी और पीड़ा से संबंधित हैं । भारत–पाक विभाजन की त्रासदी और साम्प्रदायिक राजनीति के चलते किस तरह मानवीय संवेदनाओ का ह्रास तथा मूल्यहीनता को इन कहानियों में देखा जा सकता है । इन तीनों कहानियों में समुदाय विशेष के प्रति भय डर तथा अपने ही देश में परायेपन की स्थिति और वर्षों से साथ रह रहे लोगों के आचार विचार में परिवर्तन को देखा जा सकता है । साम्प्रदायिकता से उपजी मार काट, आगजनी और विस्थापन के कारण समुदाय विशेष के लोगों की शारीरिक और मानसिक पीड़ा को भी देखा जा सकता है ।

प्रस्तुत लेख में कृष्णा सोबती की तीनों कहानियों 'सिक्का बदल गया', ' डरो मत मै तुम्हारी रक्षा करूँगा' और 'मेरी माँ कहां' के माध्यम से विभाजन की त्रासदी के दर्द, पीड़ा को देखने का प्रयास किया गया है ।

कुंजी शब्द– विभाजन, त्रासदी, साम्प्रदायिकता, पीड़ा, भारत–पाक, विस्थापन आदि ।

कृष्णा सोबती का जन्म 18 फरवरी 1925 ई. को पूर्वी पंजाब (अब पाकिस्तान) के गुजरात में हुआ था । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गुजरात में ही हुई । जब देश का विभाजन हुआ तब वे फतेहचंद कॉलेज लाहौर की छात्रा थी । कृष्णा सोबती का परिवार विभाजन की त्रासदी से गुज़रा और जन्मभूमि छोड़कर दिल्ली में रहने लगा ।

कृष्णा सोबती की कहानियों में स्त्री की आत्म सजगता, परम्परागत समाज में उसकी घुटन एवं उससे बाहर निकलने की छटपटाहट प्रमाणिकता के साथ अभिव्यक्त हुई है ।

कृष्णा सोबती की कहानियाँ 'बादलों के घेरे' संग्रह में संकलित हैं । कृष्णा सोबती के इस संग्रह की कहानियों में तीन तरह की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं । एक तो प्रेम और स्त्री पुरुष संबंधों की कहानियाँ हैं जो नई कहानी की एक विशेष प्रवृत्ति है । दूसरे वर्ग की कहानियों में उन्होंने स्त्री की यातना और पीड़ा को सामाजिक संदर्भों में चित्रित करने का प्रयास किया है ।

कृष्णा सोबती की कहानियों का तीसरा वर्ग देश विभाजन और साम्प्रदायिकता से सम्बन्धित यातना और विडम्बनाओं का चित्रण है । 'सिक्का बदल गया' इसी तरह की कहानी है जहाँ मानवीय प्रेम के लुप्त हो जाने के बावजूद सदभाव का एक संदेश निहित है ।

विभाजन यह केवल एक शब्द नहीं बल्कि एक भाव बन गया है–दर्द का, पीड़ा का विभाजन उस तूफान का नाम है जिसने लाखों लोगों को उनके ठिकानों से उखाड़ फेंका । भारत और पाकिस्तान के असंख्य लोगों के मन–मस्तिष्क पर इसकी अमिट छाप पड़ चुकी है । जो आज तक बरकरार है । "सम्प्रदाय शब्द बहुधा धर्म के साथ जुड़कर आता है । संप्रदाय का संबंध और आधार धर्म में ही केन्द्रित होता है परंतु जब इसमें राजनीति का प्रवेश होता है तो राष्ट्र, समाज पर उसका दुष्प्रभाव पड़ने लगता है और धर्म की आड़ लेकर स्वार्थ लोलुप लोग उथल–पुथल मचाने लगते हैं । धर्म की ऐसी ही सीमित और खण्डित विचारधारा सांप्रदायिकता कहलाती है ।"[i]

भारत विभाजन वह घटना है जिसकी पीड़ा से लोग आज तक नहीं उबर पाए हैं । यही कारण है कि अनेक साहित्यकारों जैसे–यशपाल, मंटो, भीष्म साहनी, अमृता प्रीतम, मोहन राकेश, कमलेश्वर, राही मासूम रज़ा आदि के सृजन में उस दर्द को देखा जा सकता है । जो बंटवारे के फलस्वरूप उपजा। भारत–पाकिस्तान विभाजन भारत इतिहास की त्रासदियों में से एक है । यह एक राजनीतिक ध्वंस से अधिक मानसिक ध्वंस के रूप में हिंदी कथा साहित्य में उजागर हुआ है । यह हिंदी साहित्य के अतिरिक्त भारतीय भाषाओं में विशेषकर उर्दू, सिंधी, पंजाबी के लेखकों ने भी इस त्रासदी को अपने साहित्य में स्थान दिया है । उर्दू में सआदत हसन मंटो और राजेन्द्र सिंह बेदी ने क्रमशः 'खोल दो', टोबाटेक सिंह और लाजवंती पंजाबी में कुलवंत सिंह विर्क की 'घास' तथा लोचन बख्श की 'धूल तेरे चरणों की' रचना की तो वहीं सिंधी भाषी मोतीलाल जोतवाणी और गुलज़ार अहमद ने क्रमशः 'धरती से नाता' और 'यादें' कहानी लिखी । हिंदी लेखकों ने विभाजन में टूटते नैतिक मूल्यों और मानवीय संवेदना के धरातल पर अपनी कहानियाँ लिखी । विभाजन की पीड़ा का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि एक लेखक विभाजन पर कई कहानियाँ लिख कर भी अपने मन की पीड़ा को कम न कर सका । कथाकारों की बेचैनी (पीड़ा) इतनी बढ़ी कि उन्होंने अब उपन्यास का भी सहारा लिया ।

कृष्णा सोबती के अतिरिक्त अज्ञेय ने शरणदाता, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'खुदाराम', विष्णुप्रभाकर ने 'तांगेवाला', उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'चारा काटने की मशीन', अमृतलाल नागर ने 'आदमी जाना अनजाना', मोहन राकेश ने 'मलबे का मालिक', भीष्म साहनी ने 'अमृतसर आ गया है', बदीउज़्ज़मा ने 'अंतिम इच्छा', स्वदेश दीपक ने 'रिफ़्यूजी', नासिरा शर्मा ने 'सरहद के इस पार' आदि कहानियों में विभाजन की त्रासदी को दिखाया गया है ।

भारत–पाकिस्तान विभाजन भारत की सबसे विनाशकारी त्रासदी है । यह कहा जा सकता है कि क्रांति की प्रतिक्रया मे जो अंग्रेजों ने क्रूरतापूर्वक व्यवहार और ज़्यादती हमारे स्वतंत्रता सेनानियों और भारतवासियों के साथ की थी उससे भी भयानक नरसंहार जैसी घटनाएँ घटी ।

कृष्णा सोबती उन साहित्यकारों में से एक हैं जिन्होंने विभाजन की समस्या को न सिर्फ देखा अपितु स्वयं भोगा भी है इस संबंध में एक साक्षात्कार में सोबती जी कहती हैं "सिर्फ मैं ही नहीं स्वतंत्रता प्रप्ति और विभाजन के ऐन बीचोबीच से होकर निकली पीढ़िया भी जो आज तक दशकों–दशक लम्बा सफर तय कर चुकी हैं वह न उस त्रासदी को भूली हैं और न ही विभाजन से जुडे देश के स्वाधीनता पर्व, को विभाजन को भूलना भी मुश्किल और उसे याद करते चले जाना भी खतरनाक लाखों लाख लोग जड़ो से कट गए कुनबे के पुराने छायादार पेड़ उखड कर ठंडे हो गए । इतिहास और भूगोल बदल गए । ऐसे में अपने को जीवित पाकर ही विस्थापित की इस त्रासदी से ऊबर कर खडे हो जाने की कोशिश कम महत्वपूर्ण नही थी । व्यक्तिगत आतंक, पीड़ा, जख्म सब हकीकत को चुनौती दे रहे थे । अपने–अपने ढंग से दोनों ओर से समय का आख्यान प्रस्तुत किया गया।"[i] [i]

उसी भोगे हुए विभाजन की समस्याओं को यथार्थ रूप में अपने कथा साहित्य में चित्रित किया है जिनमें 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान तक' में विशेष रूप से साम्प्रदायिकता को दिखाया गया है कृष्णा सोबती के एकमात्र कहानी संग्रह

'बादलो के घेरे', में संकलित 'सिक्का बदल गया', 'मेरी माँ कहाँ', 'डरो मत मैं तुम्हारी रक्षा करूगाँ' आदि कहानियों में विभाजन की पीड़ा, साम्प्रदायिकता एवं विस्थापन इत्यादि को बड़े ही मार्मिक रूप से दिखाया गया है ।

'सिक्का बदल गया' कहानी में शाहनी की मनः स्थिति के माध्यम से पाकिस्तान में वर्षों से रह रहे एक समृद्ध परिवार के उस दर्द को बयां करता है जो सत्ता परिवर्तन (विभाजन) के बाद होने वाले एक साथ रह रहे लोगों के मन में आए बदलाव का भी रेखांकन करता है । शाहनी की ये असमंजसता एक द्वन्द्व की स्थिति को उद्घाटित करती है ।

वर्षों से एक साथ रह रहे लोगों के मन में अनेक प्रश्न कौंधने लगते हैं जिससे उनका मन विचलित हो जाता है । एकाएक शाहनी अपने ही समाज, अपने ही घर, अपने ही देश में पराई हो गई है । वे लोग जो कई वर्षों से अपनी संस्कृति और परंपरा को एक साथ निभाते आए थे, एक राजनीतिक दाव के चलते अलग हो गए । यहाँ विभाजन सिर्फ भूमि का ही नहीं अपितु साथ रह रहे लोगों के मानवीय मूल्यों का भी हुआ है । जैसे कि दाऊद खां, शेरा, मुल्ला इस्माईल, बेगू पटवारी आदि पात्र जो शाहनी परिवार पर आश्रित थे विभाजन के फलस्वरूप अब वे एक दूसरे से अनजान हो गए हैं । 'सिक्का बदल गया' कहानी में शाहनी ट्रक की आवाज सुनकर अपनी हवेली से विस्थापन को सोचकर ही दर्द से कराह उठती हैं तभी वहाँ इंस्पेक्टर दाऊद आता है और शाहनी से अपने साथ कैंप में चलने को कहता है ।

शाहनी का कमजोर शरीर लड़खड़ा गया और वह अपनी स्मृतियों में खो गई। "शाहनी के कदम डोल गए, चक्कर आया और दीवार के साथ लग गई इसी दिन के लिए छोड़ गये थे शाहजी उसे? बेजान सी शाहनी की ओर देखकर बेगू सोच रहा है क्या गुजर रही है शाहनी पर। मगर क्या हो सकता सिक्का बदल गया है....।"[iii] जो गाँव शाहजी और शाहनी के इशारों पर चलता था उन सभी के परिवारों के फैसले शाहनी की चैखट पर ही हुआ करते थे और उन्हीं का फैसला सर्वमान्य माने जाते थे । आज शाहनी विभाजन के चलते उन्हीं गाँव वालों के बीच अनजान, पराई, एवं असहाय दिखाई देती हैं । शाहजी की मृत्यु के पश्चात उसी गाँव के लोग शाहनी की संपत्ति को न केवल लूटना चाहते हैं अपितु उनकी हत्या का भी षडयंत्र रचते हैं । शाहनी को आभास होते हुए भी वह उन लोगो के सामने अनभिज्ञ बनी रहती है और अपनी पीड़ा को अपने हृदय में कचोट कर रह जाती है और अपने भावों और विचारों को किसी के सम्मुख व्यक्त नहीं करती हैं ।

शाहनी की इस पीड़ा को लेखिका इस तरह व्यक्त करती हैं–"शाहनी का घर से निकलना छोटी सी बात नहीं। गाँव का गाँव खड़ा है हवेली के दरवाजे से लेकर उस द्वारे तक जिसे शाहजी ने अपने पुत्र की शादी में बनवा दिया था । गाँव के सब फैसले सब मशविरे यहीं होते रहे हैं । इस बड़ी हवेली को लूट लेने की बात भी यहीं सोची गई थी । यह नहीं कि शाहनी कुछ न जानती हो। वह जानकर भी अनजान बनी रही। उसने कभी बैर नहीं किया। लेकिन बढ़ी शाहनी यह नहीं जानती कि सिक्का बदल गया है ।"[iv] लम्बे संघर्षों के बाद देश को अंग्रेज़ों से स्वतंत्रता प्राप्त हुई लेकिन अपने ही देश के स्वार्थ लोलुप राजनीतिज्ञों तथा स्वार्थपरक लोगों ने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए जनमानस की भावनाओं को ध्यान न रखते हुए हिन्दु–मुसलमान में विभाजित कर दिया । दोनों धर्मों के लोगों को विभाजन के उपरांत उपजी विस्थापन, मानवीय मूल्यों का ह्रास और आपसी विश्वास का अभाव जैसी पीड़ादायक समस्याओं को झेलना पड़ा ।

कृष्णा सोबती ने अपनी दूसरी कहानी मेरी माँ कहाँ में 1947 के दंगे और उससे उपजी सांम्प्रदायिकता ने मानवीय मूल्यों को छिन्न–भिन्न कर दिया था । इस कहानी में सोबती जी ने विभाजन के समय होने वाले दंगों, मारकाट, आगजनी इत्यादि जघन्नीय घटनाओं को दिखाया है । इस त्रासदी ने केवल मनुष्यों के शरीरों को नहीं छलनी किया बल्कि उनकी आत्माओं एवं विश्वासों को भी छलनी कर दिया जिसके परिणामस्वरूप इसने न केवल हिन्दुस्तान की गंगा–जमुनी तहज़ीब को क्षतिग्रस्त किया बल्कि मानवीय संबंधों और विश्वासों में हिंदू–मुस्लिम की ऐसी लकीर खींच दी, जो शायद कभी आपस में एक हो पाए। धर्म के नाम

पर दोनों सम्प्रदाय के लोगो ने न केवल मानवीय संवेदनाओं को ताक पर रखा अपितु एक दूसरे की निर्मम हत्याएँ की जिससे एक भीषण साम्प्रदायिक वातावरण तैयार हो गया, तथा हज़ारों लोग मौत के घाट उतारे गए बस्तियाँ धू–धू जलकर साम्प्रदायिकता की चपेट में खाक हो गई । कृष्णा सोबती सांप्रदायिक की आग से उपजी आगजनी और भीषण पीड़ा के पीछे किसी समुदाये विशेष को ज़िम्मेदार ठहराया जाना और उससे अपराधी घोषित करने को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं करती और 'सोबती वैद संवाद' पुस्तक में कहती हैं कि "विभाजन जैसी ऐतिहासिक घटनाएँ जो संघर्ष के बाद किसी एक देश के विभाजन और नए देश के जन्म का कारण भी बनी हों, उनके राजनैतिक और सामाजिक विश्लेषण के बिना ही इकतरफा दोषारोपण करना भोलापन ही होगा । यह कहना कि यह दल अथवा वह दल, समुदाय, जाति, संप्रदाय ऐसा करने का गुनाहगार है । हिंसा, नरसंहार, आगजनी, मारकाट और राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं में से लुप्त होते हुए सिर्फ एक समुदाय विशेष को अपराधी करार देना न राजनैतिक विश्लेषण होगा और ना ही साहित्यिक अथवा ऐतिहासिक।"[v]

कृष्णा सोबती ऐसी कथाकार हैं, जिनका विभाजन की विभीषिका से सीधा सामना हुआ। देश विभाजन के बाद सबसे अधिक कष्ट शरणार्थियों को झेलना पड़ा । शरणार्थी शिविरों का जीवन बड़ा ही कष्टपूर्ण और दर्द–भरा था । इस नारकीय जीवन की उन्होंने कल्पना तक नहीं की थी । ये सभी शरणार्थी दूसरे के द्वारा बचाए जा रहे इतिहास के शिकार थे । कई लोग अपने वतन में नहीं लौट पाए थे और अपने परिवार से बिछुड़ गये थे । सोबती ने विभाजन, सांप्रदायिकता, शरणार्थी–जीवन और भ्रष्टाचार के दृश्य अपनी आँखों के सामने देखे थे ।

विभाजन की त्रासदी एवं उससे उत्पन्न घटनाओं के संबंध में नरेन्द्र मोहन जी का विचार है–"लोग युद्धों में मरते हैं राजकीय प्रकोप के शिकार होते हैं, लेकिन सदियों से एक साथ रहते आए–एक सांस्कृतिक विरासत के लोग एक दूसरे के प्रति इतनी घृणा और नफरत प्रकट कर सकते हैं हत्या करने के लिए इतने जघन्य और क्रूरतम तरीके व्यवहार में ला सकते हैं ऐसा शायद किसी ने नहीं सोचा था । भारत विभाजन इस महाद्वीप के जीवन की सबसे भयंकर त्रासदी है । इसके अप्रत्याशित आघात ने सदियों से अर्जित संस्कृति, जातीयता, भाषा और प्रकृति तथा मानवीय संबंधों को एक झटके से नष्ट कर दिया ।"[vi] इसी प्रकार की भारत–पाक विभाजन से उपजी मारकाट, साम्प्रदायिकता को सोबती जी ने अपनी कहानी 'मेरी माँ कहाँ'मे दिखाया है कि वहाँ का वातावरण धर्म के नाम पर फैली हिंसा, सांप्रदयिकता और आगजनी में परिवर्तित हो गया है । "क्या लंबी सड़क पर खड़े–खड़े यूनुस खाँ दूर–दूर गाँव में आग की लपटे देख रहा है । चीखो की आवाज़ उसके लिए नई नहीं । आग लगने पर चिल्लाने में कोई नयापन नहीं । उसने आग देखी है । आग में जलते बच्चे देखे हैं औरतें और मर्द देखें हैं । रात–रात भर जलकर सुबह खाक हो गए मुहल्लों में जले लोग देखे हैं । वह देखकर घबराता थोड़े ही है? घबराए क्या? आज़ादी बिना खून के नहीं मिलती, क्रांति बिना खून के नहीं आती और इसी क्रांति से तो उसका नन्हा सा मुल्क पैदा हुआ है ।"[vii] विभाजन के फलस्वरूप उपजी समस्याएं अत्यंत गंभीर हो चुकी थी दोनों सम्प्रदायों के लोगों के बीच विश्वास नाम की कोई चीज नहीं बची थी । प्रत्येक दिशा में फैला साम्प्रदायिकता का सन्नाटा और दंगे की भेंट चढ़ी लाखों निर्दोष लोगों की लाशे ही लाशे दिखाई दे रही थीं । इस भीषण स्थिति में एक दूसरे के प्रति विश्वास का क्षरण हो चुका था । जिसको इस कहानी में सांम्प्रदायिकता की भेंट से बची एक बच्ची के माध्यम से देखा जा सकता है । यूनुस खाँ और उसके साथियों द्वारा भारी मारकाट करते हुए बच्ची के परिजनों को भी मौत के घाट उतार देते है । यद्यपि युनूस खाँ बच्ची के प्रति स्नेह प्रकट करता है किंतु बच्ची के मन में यूनुस के प्रति किए गए स्नेह का कोई मोल नहीं था बल्कि उसके हृदय में एक संम्प्रदाय विशेष के प्रति घृणा, भय, क्रोध था । उसके हृदय में उसके परिजनों की हत्या की स्मृतियाँ कौंधने लगती हैं । स्वयं को वह यूनुस खाँ के पास असुरक्षित महसूस करती है । इस पूरी भावपूर्ण मनोदशा का वर्णन सोबती जी ने इस प्रकार किया है– "यूनुस खाँ बच्ची का सिर सहलाता है, बच्ची काँप जाती है । उसे लगता है कि हाथ गला दबोच देंगे । बच्ची

सहमकर पलकें मूँद लेती है । कुछ समझ नहीं पाती कहाँ है वह? बलोची? वह भयानक रात। और उसका भाई । एक झटके के साथ उसे याद आता है कि भाई की गर्दन गंड़ासे से दूर जा पड़ी थी.....नही लड़की खान की छाती पर मुटिठयाँ मारने लगी, 'तुम मुसलमान हो–तुम'.....एकाएक लड़की नफरत से चीखने लगी मेरी माँ कहाँ है । मेरे भाई कहाँ है । मेरी बहन कहाँ ।"[viii]

निष्कर्ष

इस तरह देखें तो सोबती जी ने विभाजन की समस्याओं को अपने उपन्यासों एवं आख्यायिकाओं में रेखांकित किया है । यद्यपि उनकी कहानियों की बात की जाए तो उनकी कहानियों में 'सिक्का बदल गया', 'मेरी माँ कहाँ', और 'डरो मत मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा' में भारत–पाक विभाजन की त्रासदी से उपजी साम्प्रदायिक समस्या, विस्थापन, आपसी अलगाव के दर्द को महसूस किया जा सकता है ।

ये सभी घटनाएँ ऐसी प्रतीत होती है जैसे कि स्वयं हमारे सामने घटित हो रही हों। निःसन्देह ये कहा जा सकता है कि सोबती जी ने इन सब घटनाओं को न केवल देखा बल्कि भोगा भी है । कृष्णा सोबती जी की ये प्रमुख कहानियाँ विभाजन की पीड़ा, दर्द एवं साम्प्रदायिकता को एक जीवंत दस्तावेज़ के रूप में प्रस्तुत करती हैं ।

संदर्भ :–

[i] दसवें दशक के हिंदी उपन्यासों में साम्प्रदायिक सौहार्द, प्रो. मंजुला राणा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृ.–70

[ii] bbchindi.com शुक्रवार, 17 नवम्बर 2006.

[iii] सिक्का बदल गया, (बादलों के घेरे, कहानी संग्रह), कृष्णा सोबती राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ.–138

[iv] वही, पृ.–138

[v] https://abhivyakti.life/2020/12/13

[vi] सिक्का बदल गया, नरेन्द्र मोहन (संपादक), सीमांत पब्लिकेशन, 1975, पृ. 11

[vii] मेरी माँ कहाँ, (बादलों के घेरे, कहानी संग्रह), कृष्णा सोबती राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ.–187

[viii] वही, पृ.–189–190

हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर जीवन संघर्ष

शेख हुसैन मैनोद्दीन
शोधछात्र
मु. पो. हाळी, ता. उदगीर जि. लातुर महाराष्ट्र
भ्रमणध्वणी 7741987830
Email dr.shaikhhm2020@gmail.com

शोधसार:

समाज ने स्त्री और पुरूष यह दो लिंग को माना गया है, लेकिन तीसरा भी जो विकृत एक लिंग है, वह ना स्त्री है ना पुरूष है प्रकृति ने उसे ही बनाया है लेकिन समाज ने इस तृतिय लिंग को हमेशा से हाशिये पर रखा है । इसी तृतीय लिंग मनुष्य को प्रायः 'किन्नर विमर्श' के रूप में संबोधित किया जाता है । आज भी अधिकतर लोग स्त्रीलिंग और पुरुष लिंग को ही जानते हैं । तीसरे लिंग के बारे में उनकी जानकारी ना के बराबर है । जब वे किन्नरों के अस्तित्व से ही अनभिज्ञ है तो उनके मुद्दों के बारे में क्या समझ पाएंगे। सभ्य कहे जाने वाले समाज के लिए केवल लिंग ही सब कुछ है । स्त्री–पुरुष लिंग के इतर वह कुछ सोचना और समझना नहीं चाहता है । जबकि भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत भी तीन लिंगों पर आधारित है । जैसे पुल्लिंग, स्त्री–लिंग और नपुसकलिंग यह हमे प्राथमिक कक्षा से ही पढ़ाया जाता रहा। जो आज यह दर्शाता है कि किन्नरों का अस्तित्व आदिकाल से रहा है ।

संस्कृत में 'किन्नर' शब्द का प्रयोग यक्ष, गंधर्व, राक्षस और अप्सरा आदि स्वर्ग वर्ग की योनियों अथवा जातियों के लिए किया जाता था । हिंदी साहित्य में भी यह इसी रूप में गृहीत रहा है । इसके अलावा किन्नौर के निवासियों को भी किन्नर कहे जाने की परंपरा रही है । परंतु जब 'थर्ड जेंडर' के लिए हिंदी में किसी तत्सम संस्कृतनिष्ठ शब्द की आवश्यकता पड़ी तो इसे 'हिजड़ा' शब्द के पर्याय के रूप में ग्रहण कर लिया गया क्योंकि हिंदी भाषा समाज में वह एक टैबू वर्जित शब्द है ।

'किन्नर' का वर्तमान अर्थ आधुनिक युग की देन है जिसे आज की परिस्थितियों में ग्रहण किया गया है । इसलिए इस शब्द की प्राचीन साहित्य में उपलब्धता के आधार पर उस समय की किन्नर जाति को अति उत्साह वश तृतीयलिंगी समुदाय घोषित करना उचित नहीं माना जा सकता।

कुंजी शब्द– *'किन्नर', एल.जी.बी.टी., 'लेस्बियन', 'गे', 'बाएसेक्सुअलसु', 'ट्रांसजेंडर' आदि।*

प्रास्तावना:

साहित्य एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा प्रत्येक वर्ग की सुध ली जाती है । दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श के साथ–साथ समाज में कई अन्य वर्ग भी हैं । जिन्हें हाशिये पर रखा गया है । इस प्रकार के विमर्श में सबसे मुख्य विमर्शों में किन्नर विमर्श है । अर्थात् एल.जी.बी.टी., एल.– 'लेस्बियन', जी अर्थात् 'गे', बी अर्थात् 'बाएसेक्सुअलसु' तथा टी अर्थात् 'ट्रांसजेंडर' है । यह एक ऐसा समूह है जिसका अस्तित्व तब से ही समाज में है जब से पृथ्वी पर जीवन का आरम्भ हुआ।

हिन्दी साहित्य में लगभग नब्बे के दशक से ही विमर्शों का दौर रहा है । हिन्दी कथा साहित्य में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श अपनी निर्णायक भूमिका के साथ अवस्थित हुए । दरअसल ये ऐसे विमर्श हैं जिन्होंनें आज़ादी से पहले ही संघर्ष करना शुरू किया और एक पूरा विमर्श बनते–बनते इन्हें कई साल लगे। किन्तु वर्तमान में हिन्दी साहित्य में ये तीनों विमर्श अपने चरम पर होने के बावजूद अल्पसंख्यक विमर्श, किसान विमर्श, विकलांग विमर्श, वृध्द विमर्श और किन्नर विमर्श साहित्य में अपनी जगह पाने की कोशिश कर रहे हैं ।

प्राचीन काल से ही इस एल.जी.बी.टी. वर्ग की उपस्थिति हमारे समाज में रही है और यही नहीं सम्मानीय स्थिति में रही है, जिसके प्रमुख उदाहरण हैं–वात्सयायन का 'कामसूत्रसू', वेद व्यास का 'महाभारत', कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' तथा 'पुराण' आदि। वर्तमान में 'खजुराहों के मंदिर' इसका सबसे अच्छा उदाहरण है जो कि यूनेस्को की धरोहर सूची में भी शामिल है । खजुराहो के मंदिर जो कि 11वीं सदी के चन्देलों नें बनवाए थे, तत्कालीन समाज में समलैंगिकता या एल.जी.बी.टी. समुदाय की उपस्थिति का एक जीता–जागता प्रमाण है । अतः इस समुदाय के अस्तित्व को हम मानते तो है किन्तु अब तक जाना पहचाना नहीं। हैरानी की बात तो यह है कि साहित्य को जो कि अत्यंत संवेदनशील माना जाता है । उसने भी इस समुदाय की ओर ध्यान नहीं दिया। हिन्दी साहित्य में एल.जी.बी.टी. विषय पर लिखे गए ग्रंथ इतने है कि इन्हें आसानी से अंगुलियों पर गिना जा सकता है ।

हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर जीवन संघर्ष की सामाजिक चेतना:

संसार में हर जीव को किसी–ना–किसी के सानिध्य में रहना अच्छा लगता है और यह प्रकृति का नियम भी है । एक अकेला जीव इस संसार में अपना जीवन यापन नहीं कर सकता। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए समाज द्वारा परिवार और समाज की अवधारणा को बनाया गया है और दोनों मिलकर एक बेहतर व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं । यह हमारे लिए दुःख की बात है कि अधिकतर किन्नरों को परिवार और समाज का साथ नहीं मिल पाता है । उन्हें तिरस्कृत करके कचरे के ढ़ेर पर फेंक दिया जाता है । जिससे उनकी मानसिक स्थिति के साथ–साथ अन्य स्थितियों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है । सरकारी और गैर–सरकारी संस्थाओं के द्वारा इनकी बेहतरी के लिए कार्य किए जा रहे हैं । ताकि इन्हें अपने जीवन यापन के लिए किसी पर किसी भी रूप में निर्भर न रहना पड़े।

किन्नरों का अस्तित्व अनंत काल से रहा है । महाभारत, रामायण, इत्यादि पौराणिक ग्रंथों में इनका उल्लेख मिलता है । महाभारत काल के शिखंडी और बृहन्नला इसके प्रमाण हैं । सभ्य समाज में किन्नर समाज को तिरस्कृत और उपहास की इष्टि से देखा जाता है । जबकि यह समाज भी हमारे समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है । सर्वोच्च न्यायात्रय द्वारा भी इस समुदाय को तृतीय लिंग के रूप में मान्यता प्रदान की जा चुकी है ।

किन्नर जिन्हें भारतीय सर्वाेच्च न्यायालय द्वारा तृतीय लिंग की संज्ञा से विभूषित किया जा चुका है, भले ही यह संख्या में सीमित है । लेकिन इनके बिना समाज के पूर्ण होने की कल्पना नहीं की जा सकती है । साहित्य, सिनेमा, पत्रकारिता आदि जनसंचार के माध्यमों द्वारा किन्नरों के प्रति सकारात्मक सोच को बढ़ावा दिया जा रहा है । इस दिशा में अनुसंधान का क्षेत्र भी पीछे नहीं है । किन्नरों की सामाजिक स्थिति और उनके जीवन के अनछुए पहलुओं को साहित्य के माध्यम से उजागर करने का भरसक प्रयास किया जा रहा है ।

शैलेंद्र सिंह कुशवाहा अपने एक लेख में किन्नरों की सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि, ''किन्नर समुदाय के लोगों में बहुत सारी क्षमताएँ हैं । माहौल अच्छा मिले तो वे जीवन में बहुत आगे बढ़ सकते हैं । परंतु सामाजिक विषमताओं के चलते यह सारी संभावनाएं और प्रतिभाएँ अंदर दबी रह जाती है ।''1

समाज में बहुत से ऐसे किन्नर है जिन्होंने अपनी प्रतिभाओं का उदाहरण प्रस्तुत किया है । जैसे ल्स्क्ष्मी नारायण त्रिपाठी, मानबी बंदोपाध्याय, रूबीना बरिहा, अमृता सोनी, गौरी सावंत इत्यादि । यह वे नाम है जिन्हें किसी पहचान की आवश्यकता नहीं है । लेखक ने न केवल इनकी प्रतिभाओं के विषय में लिखा है बल्कि समाज की कुंठित मानसिकता को भी उजागर करने का भरसक प्रयास किया है ।

'दरमियाना' उपन्यास में संध्या की शारीरिक बनावट को न समझने के कारण सामान्य डॉक्टर और स्त्री विशेषज्ञ दोनों अपने हाथ खड़े कर देते हैं । उसे एक अस्पताल से दूसरे अस्पताल के चक्कर लगाने पड़ते हैं जबकि उसकी हालत बहुत नाजुक थी । इसी लापरवाही के कारण संध्या की मृत्यु हो जाती है । इस उपन्यास में समाज की उस कमी को उजागर किया गया है जहां जानवरों के तो अस्पताल है लेकिन इन किन्नरों के लिए स्वास्थ्य संबंधित कोई सेवा ही नहीं है ।

समाज द्वारा इनकी जो तथाकथित सामाजिक पहचान बना दी गई है उसके विषय में शैलेन्द्र सिंह कुशवाहा ने विस्तार से लिखा है । लेखक ज़ोर देकर कहता है कि, ''अपने परंपरागत आचरण के कारण यह भीड़ में सबसे अलग–थलग नज़र आते हैं । इनका पहनावा, बातचीत का लहजा, ताली बजाना, सदियों के अत्याचार और भेदभाव के चलते अपनी एक अलग पहचान बनाने की प्रवृत्ति के कारण है । अपने पहनावे के जरिए या बोलने के लहजे से वे किसी–न–किसी रूप से स्वयं को आईडेंटिफाई करना चाहते हैं ।''2 यह समुदाय अपने अस्तित्व की इस पहचान को कतई बनाए नहीं रखना चाहता है । ये भी आमजन की तरह सरल जीवन जीना चाहते हैं ।

इस समाज को प्रताड़ना, शोषण, उपहास, घृणा का सामना करना पड़ता है । समाज द्वारा इस प्रकार के भेदभाव के व्यवहार के चलते यह समाज अपनी प्रतिभाओं को सही तरीके से उजागर और विकसित करने में असमर्थ है । क्योंकि इनको जिस प्रकार का सहयोग और समर्थन मिलना चाहिए वैसा उनको नहीं मिल पा रहा है । इसी से इनमें आक्रोश और क्रोध की भावना बढ़ रही है । रोजगार के अधिकतर द्वार उनके लिए बंद ही है । अपना पेट पालने के लिए भीख मांगने, बधाई मांगने और वेश्यावृति के विकल्प के अलावा और कोई विकल्प इनके समक्ष है ही नहीं ।

प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली' उपन्यास में किन्नरों की सामाजिक संस्थाओं एवं जीवन संघर्ष से संबन्धित महत्वपूर्ण जानकारी दी गई है । इस उपन्यास में किन्नरों के रोजमर्रा के जीवन में उनकी संस्कृति, व्यवसाय तथा मुख्यधारा के समाज द्वारा उनके साथ बर्ताव, सामाजिक व्यवस्था को अवनति का मुख्य कारण बताया है । इतिहास के पृष्ठों को पलटते हैं तो दिखाई देता है कि मुगल काल में यह समुदाय राजाओं के महलों में रहते थे और रानी एवं राजाओं की सेवा करते थे।

मुगल काल में किन्नर किस तरह की वेशभूषा धारण करते थे और इनके साथ जो ताली बजाने की परंपरा जुड़ी हुई है । जिससे ये अपने को अलग दिखाने का प्रयास करते हैं उसकी आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला गया है, ''मुगलों के ज़माने में किन्नर पुरुष वेशभूषा में ही रहते थे। साड़ी पहनने का रिवाज़ नहीं था । तो ताली बजाने की परंपरा कहीं–न–कहीं इसी मानसिकता से जुड़ी है कि मैं अपने जेंडर, लिंग की पहचान कैसे कराऊँ? यह मानसिकता अब परंपरा रह चुकी है । पर यह सब हमें कहीं–न–कहीं आम जनता से अलग कर रहा है ।

इस कम्युनिटी को चाहिए कि समाज से अलग दिखने–रहने की कोशिश ना करें। हिजड़ों, किन्नरों को अपनी वर्तमान पारंपरिक छवि को बदलकर समाज की मुख्यधारा से जुड़ने की कोशिश करनी होगी ताकि आम जनता उनकी उपस्थिति में स्वयं को असहज महसूस ना करें। पर यह तभी संभव है जब समुदाय के लोगों की सोच बदलेगी।

वंचित, शोषित, कुचले समुदायों में से ही एक हिजड़ा समुदाय भी है, जो आज भी स्वयं को इंसान कहे जाने के लिए संघर्षरत है । डॉ. भारती अग्रवाल इस तथ्य को पुष्ट करते हुए अपने लेख में लिखती हैं, ''आज का दौर अस्तित्व की पड़ताल का

दौर है । हाशिए पर धकेले गए स्त्री और पुरुष अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत हैं । ऐसे समय में समाज के एक वर्ग को निरंतर अनदेखा किया गया है वह थर्ड जेंडर है ।''3

समाज का यह छिपा हुआ अल्पसंख्यक वर्ग जिन्हें हिजड़े (किन्नर) कहा जाता है । 21वीं सदी में भी यह समाज हाशिए पर अपनी जिंदगी व्यतीत करने के लिए विवश है । जिनकी आर्थिक स्थिति भी निम्न या निम्नतर स्तर की है । समाज में इनके अस्तित्व के प्रति अस्वीकार्यता पहले ही बनी हुई है जो इनकी प्रतिभा को उभरने नहीं देती, इससे इनके रोजगार के सामान्य अवसर भी छीन लिए जाते हैं । इनके लिए सरकारी नौकरी तो दूर की बात है, इन्हें सामान्य घरेलू, छोटे–छोटे कामों पर भी नहीं रखा जाता है । इनकी अशिक्षा भी रोजगार के अवसरों पर विपरीत प्रभाव डालती है । लोगों में यह भ्रांति है कि इन लोगों के पास बहुत धन होता है, लेकिन ऐसा नहीं है । दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए इनके पास कोई आजीविका का स्थायी साधन नहीं है । तो धन एकत्रित होने वाली बात कैसे सच हो सकती है ।

इस समुदाय के प्रति समाज की अज्ञानता ही शोषण का कारण है । अपनी आजीविका चलाने के लिए विभिन्न शुभ अवसरों पर यथा पुत्र जन्म, पुत्र की शादी, त्योहारों आदि पर नाच–गाना करके बधाई के द्वारा लोगों से लोगों की इच्छानुसार पैसा लेना, भिक्षावृत्ति तथा नृत्य गायन के द्वारा ये लोग अपनी जीविका को बड़ी कठिनाई से चलाते हैं ।

'मैं पायल' उपन्यास की जुगनी अपनी पहचान को छिपाते हुए होटल, सिनेमा हॉल आदि स्थानों में कार्य करती है । उसे अपने समुदाय के द्वारा किए जा रहे पारंपरिक कार्य पसंद नहीं है । जुगनी की ही तरह 'तीसरी ताली' के विजय का ये संवाद पारंपरिक पेशे के अलावा भी इनके समक्ष जीविका अर्जन के अन्य विकल्प है को दर्शाता है, ''दुनिया के दंश से अपने–आपको बचाने के लिए मैंने लगातार लड़ाई लड़ी और खुद को स्थापित किया। मैं नाचना–गाना नहीं, नाम कमाना चाहता था । भगवान राम के उस मिथक को झुठलाना चाहता था, जिसके कारण तीसरी योनि के लोग नाचने–गाने के लिए अभिशप्त हैं, परिवार और समाज से बेदखल है ।''4

इसके विपरीत 'दरमियाना' उपन्यास में तारा, रेशमा, संध्या, सुनंदा आदि किन्नरों द्वारा आजीविका चलाने का एकमात्र साधन उनके पारंपरिक व्यवसाय को ही दर्शाया गया है । मुख्य धारा के लोग किन्नरों को केवल उनके व्यवसाय से जानते हैं । उनके हृदय तक पहुंचने का कभी प्रयास नहीं किया जाता है । मुख्यधारा और किन्नर समाज के मध्य जो दूरी बनी हुई है उसका एक कारण यह भी हो सकता है कि समाज में इनकी स्थिति का आकलन नाचने–गाने, वेश्यावृति, भीख मांगने से ही लगाया जाता है । इसी कारण यह मजाक और हास्य के पात्र मात्र बनकर रह जाते हैं । सुप्रीम कोर्ट दवारा दिए गए आदेश के बावजूद समाज की मानसिकता इनके प्रति रूढ़िवादी ही बनी हुई है । शायद हमारी संस्कृति में लिंग से ऊपर कुछ है ही नहीं ? तभी इस लिंग विहीन या अधूरे लिंग के मनुष्य को दर–दर की ठोकरें खाने को छोड़ दिया जाता है । 'दरमियाना' उपन्यास में किस प्रकार से किन्नरों को हास्य के पात्र इस समाज द्वारा समझा जाता है इसका हुबहू चित्रण किया गया है, ''इसके बाद जब भी तारा हमारी बस्ती में आती है मुझे लगता है कि जैसे मनोरंजन का इससे, बढ़िया और मुफ्त दूसरा कोई साधन नहीं हो सकता...और जैसे किसी शहरी बस्ती में हाथी या ऊंट जैसा अजूबा आ जाने पर छोटे–छोटे बच्चे उसके पीछे दूर तक निकल जाते हैं । मैं तारा और उसके मंडली के पीछे लगा रहता....।''5

उक्त कथन को पढ़ने से किन्नरों के प्रति जो समाज का दृष्टिकोण है वह स्पष्ट हो जाता है । इससे यही अर्थ निकाला जा सकता है कि किन्नरों को मुख्यधारा द्वारा केवल मनोरंजन की वस्तु मात्र समझा जाता है । इनके इस अलग व्यवहार के कारण इन्हें प्रताड़ित और बेइज्जत किया जाता है ।

'ऐ ज़िन्दगी तुझे सलाम' उपन्यास में रोशनी के संघर्ष के साथ निर्मला गुरु, रज्ज़ो, रानी, काजल, सलीमा आदि किन्नरों के संघर्ष को भी उजागर किया गया है । उनकी नियति ने और समाज के रूखे व्यवहार ने उनको आजीवन संघर्ष करने के लिए विवश कर दिया है । न चाहते हुए भी उन्हें वो सब काम करने पड़ते हैं जिनकी इजाज़त उनका हृदय नहीं देता है । हर किसी का इतिहास एक दर्दनाक कथा कहता है और इस दर्दनाक इतिहास की पीड़ा उसके वर्तमान और भ्रविष्य को भी प्रभावित करती है । उपन्यास की पात्र रानी चाची की कथा का लेखक ने इस प्रकार वर्णन किया है, ''इसका पिता पूरा जल्लाद था । पाँच भाई–बहनों में यह सबसे छोटी थी । जब बाप को पता चला बेटी नहीं, हिजड़ा हुई है उसकी संतान, तो जचकी में घुस गया था और रानी को पकड़ जमीन में उठाकर पटकने ही वाला था कि ऐन वक्त पर डाक्टरनी और नर्सों के आ जाने से पटक नहीं पाया था ।''6

समाज से बहिष्कृत कर दिए गए इस समुदाय को प्रत्येक कदम पर अपने हिजड़ेपन के लिए जिल्लत उठानी पड़ती है । मुख्यधारा के समाज और उसके स्थान से पृथक गंदी बस्तियों और गलियों में ये अपना आसरा ढूंढते है । जितने भी लोग इस समुदाय में रहते हैं वह कोई अपनी मर्ज़ी से नहीं आते वे सभी समाज से निष्कासित और बहिष्कृत होकर आते हैं । जैसे काला पानी की सजा काट रहे हो, सब के सब दिशाहीन–सी अनाम ज़िन्दगी काट रहे होते हैं ।

'मैं भी औरत हूँ', 'जिंदगी 50–50' और 'अस्तित्व' उपन्यासों की पृष्ठभूमि अन्य उपन्यासों से भिन्न है । इन उपन्यासों में किन्नर बच्चों को अपने अभिभावकों का संरक्षण प्राप्त होता है । इनके माता–पिता इनकी पहचान छिपाते हुए अच्छी शिक्षा दिलाकर अपने बच्चों को आत्मनिर्भर बनाते हैं । माता–पिता की सामाजिक स्थिति ही इन किन्नर बच्चों के साथ जुड़ी हुई है । ये बच्चे एक सामान्य बच्चों की तरह ही अपना जीवनयापन करते हैं ।

'ज़िंदगी 50–50' उपन्यास में 'हर्ष' उर्फ 'हर्षिता' को समाज और परिवार के द्वारा उसके किन्नर होने के ताने सहने पड़ते हैं । अपने पिता की मारपीट, गाली गलौज से परेशान होकर हर्षिता अपने जैसे लोगों के बीच चली जाती है । वहाँ उसका जीवन भी अन्य किन्नरों की भांति नाच–गाकर, भीख मांग कर, बधाई मांग कर गुजरता है । जबकि हर्षिता के बड़े भाई अनमोल का पुत्र सूर्या भी किन्नर पैदा होता है । लेकिन उसे अनमोल और उसके परिवार का पूर्ण सहयोग मिलता है । इसी सहयोग के आधार पर सूर्या समाज में अपनी पहचान एक डिटेक्टिव के रूप में स्थापित करने में सफल हो पाता है ।

इसी प्रकार से 'अस्तित्व' की प्रीत और भी औरत हूँ की रोशनी और मंजुला को भी अपने परिवार का पूर्ण सहयोग मिलता है । इनके अभिभावक समाज के समक्ष इनकी पहचान को उजागर नहीं होने देते और बड़ी सूझ–बुझ के साथ अपने बच्चों का पालन–पोषण करते हैं ।

'मैं पायल' उपन्यास में जुगनी या पायल को पिता के उत्पीड़न से बचकर भागना पड़ता है । काफी समय तक जुगनी अपनी पहचान एक पुरुष के रूप में ही बना कर रखती है । लेकिन अधिक समय तक पायल अपने शरीर और आत्मा की आवाज़ को अनसुना नहीं कर पाती है और अपने को एक स्त्री के रूप में समाज के समक्ष स्थापित करती है । उपन्यास के अंत में लखनऊ का किन्नर गुरु बनकर समाज में अपनी पहचान बनाती है ।

चंडीगढ़ की रहने वाली सामाजिक कार्यकर्ता किन्नर धनंजय चौहान के द्वारा कही गई निम्न पंक्तियां किन्नरों के संघर्ष और जिजीविषा को दर्शाती हैं, अपने जन्म से खुद को पाया हमने संघर्ष करके खुद पाया। आगे धनंजय कहती है, कुछ लोगों के लिए मैं एक मानसिक बीमार और एक बहुरूपिया या कलंकी इंसान हो सकती हूँ। लेकिन अपने आप को समझना और फिर उस समझ को दुनिया को समझा कर, अपने आप को दुनिया के बीच स्थापित करना इतना आसान नहीं था । जेंडर शारीरिक पहचान नहीं बल्कि एक सामाजिक पहचान है ।''7 अपनी सामाजिक पहचान बनाने के लिए कितनी मानसिक पीड़ा से गुजरना पड़ा होगा यह धनंजय के उपर्युक्त शब्दों से अंदाजा लगाया जा सकता है । साथ ही इनकी सामाजिक स्थिति कैसी है यह भी स्पष्ट हो जाता है ।

निष्कर्ष:

अतः कहा जा सकता है कि इस समुदाय की सामाजिक स्थिति में जिस प्रकार से परिवर्तन होना चाहिए था उस प्रकार से नहीं हुआ है । परिवर्तन की गति धीमी है । आज भी इन्हें सड़कों पर भीख मांगते, बधाई गाते, वेश्यावृति करते हुए देख सकते हैं । बहुत ही कम संख्या में ये समुदाय सरकारी, निजी दफ्तरों में दिखाई देते हैं । अच्छे पद पर होने के बावजूद भी इनके प्रति अपशब्दों का प्रयोग किया जाता है । इनकी प्रतिभा के आधार पर नहीं बल्कि लिंग के आधार पर इनकी क्षमता का मूल्यांकन करने की प्रवृति अभी भी बनी हुई है । लिंग आधारित इस समाज की मानसिकता में कब बदलाव आएगा, इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता । हाँ, यह जरूर कहा जा सकता हैं कि इस दिशा में साहित्य के माध्यम से जो प्रयास किए जा रहे हैं, वह उल्लेखनीय हैं । साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं बल्कि दीपक भी है । जिस प्रकार से अन्य विमर्शों जैसे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श और विकलांग विमर्श दबे कुचले मानव की आवाज़ बने हुए है उसी प्रकार से किन्नर विमर्श भी किन्नरों की आवाज़ बन रहा है ।

संदर्भ:

1. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली पृ.178
2. महेंद्र भीष्म, मैं पायल पृ. 24
3. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, पृ. 186
4. नीरजा माधव, यमदीप, पृ. 93
5. महेंद्र भीष्म, किन्नर कथा, पृ. 41–42
6. डॉ. मोनिका देवी, अस्तित्व की तत्राश में सिमरन, पृ. 39
7. सं.डॉ. कुमार गौरव मिश्रा, जनकृति, वर्ष–2, अंक–8, अगस्त पृ. 13

मृदुला गर्ग कृत... 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में नारी

*** प्रो. डॉ. हाशमबेग मिर्जा**
शोध निर्देशक,
कला, वाणिज्य व विज्ञान, महाविद्यालय, नळदुर्ग
जि.धाराशिव
भ्रमणध्वणी 9421951786
Email drmirzahm@gmail.com

**** सिनगरवार पांडूरंग गिरजप्पा**
शोध छात्र,
रामकृष्ण परमहंस महाविद्यालय,तांबरी विभाग, धाराशिव
जि.धाराशिव
भ्रमणध्वणी 9096909936
Email singarwarpandurang@gmail.com

शोधसार:

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास मृदुला गर्ग की पहली कृति है जिसे ई.सन् 1975 में अक्षर प्रकाशन से राजेंद्र यादव ने छापा था । यह स्त्री–पुरुष सम्बन्धों पर आधारित एक प्रौढ़ एवं सर्वाधिक चर्चित व प्रशंसित उपन्यास है । यह शायद पहला उपन्यास था किसी भी भाषा में जिसमें विवाह के इतर प्रेम होने पर स्त्री को कोई अपराध बोध नहीं होता है । यह उपन्यास समय में बंधकर कर नहीं बल्कि आगे के बारे में लिखा गया है । ई. सन 1975 में जब लेखिका विवाहेत्तर सम्बन्धों के बारे में लिख रही थी तो उस समय समाज में ऐसी घटनाएँ घटित हो रही थी लेकिन सच कहने का जोखिम कोई उठाना नहीं चाहता था । लेखिका 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास के माध्यम से हिन्दी साहित्य में नए मानदण्ड को लेकर उपस्थित होती हैं । जो पुरातन रुढ़िवादी स्त्रियों के पति धारणा को ध्वस्त करती हैं । अपने अधिकांश उपन्यासों में आज की नारी को उसके सहज मानवीय रूप में चित्रित करती है तथा उसके अस्तित्व को स्वतन्त्र रूप में दृढता पूर्वक स्वीकार करती है ।

बीज शब्द: 'चित्तकोबरा', 'अनित्य', 'डैफोडिल जल रहे हैं', 'ग्लेशियर से', 'उर्फ सैम', वयःसन्धि

प्रास्तावना:

मृदुला गर्ग जी का जन्म 25 अक्टूबर, 1938, कोलकाता में हुआ। वे हिंदी की सबसे लोकप्रिय लेखिकाओं में से एक हैं । उपन्यास, कहानी संग्रह, नाटक तथा निबंध संग्रह सब मिलाकर उन्होंने 20 से अधिक पुस्तकों की रचना की है । 1960 में अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि लेने के बाद उन्होंने 3 साल तक दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य किया है । उनके उपन्यासों को अपने कथानक की विविधता और नयेपन के कारण समालोचकों की बड़ी स्वीकृति और सराहना मिली। उनके उपन्यास और कहानियों का अनेक हिंदी भाषाओं तथा जर्मन, चेक, जापानी और अँग्रेजी में अनुवाद हुआ है । वे महिलाओं तथा बच्चों के हित में समाज सेवा के काम करती रही हैं । उनका उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' नारी–पुरुष के संबंधों में शरीर को मन के समांतर खड़ा करने और इस पर एक नारीवाद या पुरुष–प्रधानता विरोधी दृष्टिकोण रखने के लिए काफी चर्चित और विवादास्पद रहा था । उन्होंने इंडिया टुडे के हिन्दी संस्करण में 2003 से 2010 तक 'कटाक्ष' नामक स्तंभ लिखा है, जो अपने तीखे व्यंग्य के कारण खूब चर्चा में रहा।

उन्होंने कुल मिलाकर आठ उपन्यास लिखे है, जिसके शीर्षक इस तरह से है । 'उसके हिस्से की धूप', 'वंशज', 'चित्तकोबरा', 'अनित्य', 'मैं और मैं', 'कठगुलाब' और 'मिलजुल मन' । ग्यारह कहानी संग्रह– 'कितनी कैदें', 'टुकड़ा

टुकड़ा आदमी', 'डैफोडिल जल रहे हैं', 'ग्लेशियर से', 'उर्फ सैम', 'शहर के नाम', चर्चित कहानियाँ, 'समागम', 'मेरे देश की मिट्टी अहा', 'संगति विसंगति', 'जूते का जोड़ गोभी का तोड', चार नाटक– 'एक और अजनबी', 'जादू का कालीन', 'तीन कैदें और सामदाम दंड भेद', तीन निबंध संग्रह– 'रंग ढंग', 'चुकते नहीं सवाल' तथा 'कृति और कृतिकार', एक यात्रा संस्मरण– 'कुछ अटके कुछ भटके' तथा दो व्यंग्य संग्रह– 'कर लेंगे सब हजम' तथा 'खेद नहीं है' यह अब तक प्रकाशित हुए हैं ।

मृदुला गर्ग कृत... 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में नारी संवेदना :

'उसके हिस्से की धूप' मृदुला जी का यह पहला उपन्यास तीन पात्रों को आधार बनाकर लिखा गया है । 149 पृष्ठों वाले इस उपन्यास को तीन भागों में विभाजित किया गया है । तीन भागों का विभाजन तीन पात्रों के नामों के धरातल पर किया गया है । जैसे– 'जितेन', 'मधुकर' और 'मनीषा', जो उपन्यास के केन्द्र में है । वर्णनात्मक, पुर्वदिप्ती, स्मृत्यावलोकन शैलियों के माध्यम से उपन्यास को लेखिका ने लिखा है । जिसका मुख्य उद्देश्य वैवाहिक जीवन की उदासीनता, यौन संबंधों से उत्पन्न द्वन्द्वों को निरूपित करके स्त्री स्वतंत्रता उसके स्व–अस्तित्व की खोज पर आधारित है ।

इस उपन्यास की कथा इस तरह से है । 'मनीषा' और 'जितेन' का विवाह प्रबन्धित विवाह था । 'जितेन' एक फैक्टरी में मैनेजर है । उसके पास समय का अभाव रहता है । शायद इसलिए 'मनीषा' के पास समय ही समय है । वह समय काटने के लिए कालेज में लेक्चरर हो जाती है । बचपन से ही उसके अचेतन मन में प्रेम विवाह करने की आकांक्षा थी । जिसका वह दिवास्वप्न देखा करती थी । विवाहोपरान्त अपने पति 'जितेन' के प्रेम और अपने अज्ञात प्रेम में उलझी रहती है । उसकी अतृप्ति, दमित इच्छाएँ और कुण्ठाएँ उसके चेतन मन पर भारी पड़ जाती है । वह ऐसे अचेतन की कल्पना करती है, जिसमें पड़कर मनुष्य अपने अस्तित्व को भुला बैठता है, बड़े–से–बड़े आत्म त्याग करने को तत्पर हो जाता है ।

विवाह के दो वर्ष बाद भी 'जितेन' के साथ रहते हुए भी उसकी उदासीन और गहरने लगी थी । उसके मन की अतृप्ति भावना सम्भोग के समय भी कम नहीं होती जिससे वह अपना अस्तित्व भुला सके। इसलिए 'मनीषा' के मन में सदैव द्वन्द्व चलता रहता है कि, क्यों दोनों इस आलीशान कोठी की चारदीवारी में पड़े सड़ रहे हैं । सदैव उसके अहम को ही क्या झुकना पड़ता है । वह अपने पति की व्यस्तता को अपने प्रति उसकी उदासीनता समझती है ।

उपन्यास का एक अन्य पात्र भी है जिसका नाम 'सुधा' है । सुधा काॅलेज में 'मनीषा' की साथी है । वह मानती है कि, 'प्रेम होने' और 'दांत दर्द' होने में कोई अन्तर नहीं है । वह प्रेम का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं मानती उसे वयःसन्धि की रोमान्टिक भावना मानती है । 'सुधा' का स्थिरचित्त 'मनीषा' की मनःस्थिति को एक चुनौती लगता है । 'सुधा' ही उसे 'मधुकर' से मिलाती है । 'मधुकर' एक हँसमुख, स्वस्थ, जीवनी शक्ति से भरपूर युवा प्रोफेसर है । वह 'मनीषा' को देखकर उस पर मुग्ध हो जाता है, और बिना कुछ जाने बूझे उसे प्राप्त करने को बेचैन हैं । वह प्रेम का पक्षपाती है । प्रेम उसके लिए अलौकिक भावना है । वह जानते हुए भी कि 'मनीषा' एक विवाहित स्त्री है, वह उससे प्रेम करने लगता है । अपनी ऊब को मिटाने और खालीपन को भरने के लिए 'मनीषा' प्रो. मधुकर से प्रेम संबंध स्थापित करती है ।

'मनीषा' कहती है कि, ''मधुकर के प्रथम चुम्बन से उसे ऐसा लगा जैसे पास खिले जवा कुसुम ने आहिस्ता से उसके होठों को अपनी मृदुल पंखुड़ी से छू लिया हो । उसके नन्हें से स्पर्श से उसका सारा शरीर रोमांचित हो उठा। उसके अतृप्ति मन को तृप्ति से पूर्ण कर देता है । अपने आप में वह कुछ नहीं थे पर यह चुम्बन! यह प्रेम की परिणति था, प्रेम की घोषणा अपने आप में एक पूर्ण क्षण। उसने उसके हृदय की गहराइयों में झाँका था उसकी आत्मा के संगीत को सुना था, और उससे एक सुर हो उसमें लीन हो गया था ।"1

'मनीषा' अपनी अतृप्ति भावना और अधूरेपन (एकरसता) को मधुकर के प्रेम से अपने जीवन को भर देना चाहती है । इसलिए वह 'जितेन' से विवाह विच्छेद करने की सोचती है । वह उपन्यास में कहती है, ''जिस आदमी को उससे दो बात करने की फुर्सत नहीं है, उससे कैसा लगाव? जो रिश्ता रात के अँधेरे में जन्म लेता है, और चन्द घंटे कायम रहकर दिन के उजाले के साथ–साथ खत्म हो जाता है, उसे तोड़ने में कैसा संकोच?''2 'मनीषा' जितेन को अपने और 'मधुकर' के रिश्ते के बारे में सब कुछ बता देती है । जितेन उसके प्रेम के बारे में कहता है– ''यह महज आकर्षण है । जब वह चुक जायेगा तो क्या करोगी? प्रेम जरूर चुक जाता है । यही उसकी नियति और यही उसकी त्रासदी ।''3

'मनीषा' बचपन से प्रेम विवाह करने की प्रबल इच्छा को 'मधुकर' के माध्यम से पूरा करना चाहती है । 'जितेन' अत्याधिक स्थिरचित व्यक्तित्व वाला है । वह इतनी उदार दृष्टि रखता है कि, वह 'मनीषा' को 'मधुकर' के पास जाने की अनुमति दे देता है, और कहता है–''चुनने का अधिकार सबको है, एक बार और सोच लो । 'तलाक' की जरूरत मैं नहीं समझता। प्रेम जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। पर मानव स्वतंत्रता में उसकी गहरी निष्ठा है ।''4 वह 'मनीषा' से कहता है कि, ''जबरदस्ती करके तुम्हें नहीं रोकूँगा 'मनीषा' एक इन्सान का दूसरे पर इतना अधिकार मैं नहीं मानता। इतना जरूर कहूँगा, एक बार और सोच लो। मैं तुम्हें चाहता हूँ बस और चाहता हूँ तुम न जाओ। इसके अलावा सिर्फ यह कह सकता हूँ कि, कभी लौटना चाहो तो लौट आना।''5 'मनीषा' इसे केवल ठण्डी सहानुभूति मानती है, और अपने निर्णय पर अटल रहती है ।

'मनीषा', मधुकर के साथ पुनर्विवाह कर लेती है । परन्तु उसकी रिक्तता कम नहीं होती है । उसके अंतरमन को संतुष्टि नहीं मिलती है । जिससे उसका जीवन लेखन और गृहस्थी के दो पाटों में पिसने लगता है । 'मनीषा' का यह वैचारिक द्वन्द्व मानसिक स्तर पर तो चलता ही है, साथ ही रचनात्मक स्तर पर भी चलने लगता है । 'मधुकर' के साथ रहते हुए चार साल गुजर गये हैं, और उसकी भावुकता का उबाल कम हो गया है ।

एक दिन 'जितेन' जब उसे नैनीताल में मिल जाता है तो, एक बार फिर उसके प्रेमाकर्षण में बंध जाती है । 'जितेन' से मिलकर प्रफुल्लित मन से वह घर जाती है । तो अब उसे 'मधुकर' से उसका बात करना भी अच्छा नहीं लगता है । 'जितेन' के मिलने के बाद वह 'मधुकर'की बातों में ऊब महसूस करने लगती है, और एक बार फिर उस रास्ते पर चल देती है जिसे कुछ देर पहले अर्द्ध सम्मोहन की स्थिति में उसने पार किया था ।

नैनीताल से लौटाने के बाद जब अचानक 'जितेन' का फोन आता है, तो वह शारीरिक गरमाहट महसूस करती है । जितेन उसे इन्टर कान्टिनेन्टल होटल के हाउस बोट में बुलाता है । वह वहाँ जाना स्वीकार कर लेती है । अपनी दैहिक क्षुधा को शान्त करने के लिए वह बिल्कुल सही समय पर वहां पहुँच जाती है । आज इतने दिनों बाद 'जितेन' के कठोर आलिंगन में आकर उसने समझा कि, ''प्यार करना कला नहीं जरूरत है । यूँ तो न जाने इन्सान की कितनी जरूरते हैं... हाँ जब दोनों की जरूरत एक हो तो शरीर का मिलन अद्भुत अनुभव की वस्तु बन जाता है । देह क्या इतनी तुच्छ वस्तु है कि, कर्म करने के लिए उसे हरदम किसी–न–किसी मुखौटे की आवश्यकता है । प्यार–प्यार–प्यार...क्या चरमोत्कर्ष के दहलाते क्षण शरीर के अपने नहीं, प्यार के उधार में मिले हुए हैं... जब से वह प्यार के चक्कर में पड़ी है, वासना उससे छूट गयी है... आज पहली बार 'मनीषा' ने समझा और स्वीकारा कि शरीर का अपना एक वैभव और औचित्य है ।''6 'यौनतृप्ति' ही सब कुछ है । वह 'प्यार' और 'वासना' में अन्तर करते हुए सोचती है, क्या प्रेम में देह से अनभिज्ञ रहा जा सकता है? प्रेम और देह की मिलीजुली क्रीड़ाओं को ही तो वासना का नाम दिया जाता है । तो फिर उसमें अन्तर कैसा ।''7 मनीषा ने कल तक जिस 'जितेन' की व्यस्तता को उदासीन कहकर उसे अलग छिंटक दिया, वह उसकी उदासीनता नहीं बल्कि उसकी परिपक्वता है ।''8

प्रेम संबंधों के विकृत होने का मूल कारण जो सामाजिक विसंगतियों की ओर संकेत करता है । जो सदियों उसकी मानवीय अस्मिता और अधिकारों का हनन कर रही है । इस दृष्टि से यह सघन सामाजिक सरोकरों से अनस्थूल है । 'जितेन' की पत्नी के रूप में 'मधुकर' का आकर्षण और 'मधुकर' की पत्नी के रूप में 'जितेन' के प्रति समर्पण की लालसा न तो 'मनीषा' की चरित्रहीनता का भाष्य रचता है, न सैक्सुअल अतृप्ति का । वह विवाह जैसे बुनियादी संस्था की अमानवीय संरचना को कटघरे में खड़ा करती है । क्यों स्त्री अपनी संवेदना, सपने और भविष्य भूलकर पुरुष की परछाई मात्र बन जाए ।

मृदुला जी ने 'मनीषा' के चारित्रिक गठन के आन्तरिक स्वरूप, संवेदना, मनोभावों, अन्तद्वन्दों, सोचों, प्रतिक्रियाओं और अवचेतना में सुप्त कामनाओं के विश्लेषण द्वारा चित्रित किया। 'मनीषा' साहित्य कला प्रेमी, सृजनशील लेखिका के रूप में अपने अस्तित्व को खोजती नजर आती है । उसकी इच्छाएँ–आकाक्षाएँ आधुनिकतावादी होने की ओर इशारा करती है । 'मनीषा' अपना स्वयं विश्लेषण करते हुए कहती है–''आखिर वह चाहती क्या है, गेंद की तरह 'जितेन' और 'मधुकर' के बीच लुढ़कते रहना, जितेन जो चार वर्ष पहले था वहीं आज भी है, और वहीं सदा रहेगा।''9 लेकिन 'मधुकर' के प्रति उसकी भावुकता कम होती जा रही है । लेकिन अब और आत्मछलना नहीं, यही मेरी कुण्ठा का कारण है । इसलिए मैं अपने से और मधुकर से, जीवन से उदासीन हो उठी हूँ, इसलिए मेरा प्रेम शिथिल हो गया है । 'जितेन' के साथ बिताये पिछले दो दिनों में उसकी दृष्टि को इतना प्रखर रूप से अन्तर्मुखी बना दिया कि, वह थोपे हुए कारणों से संतुष्ट होने वाली मुग्धावस्था में वह नहीं थी ।

'मनीषा' कल और आज वह इतनी ईमानदारी से जी चुकी थी कि, उन तमाम गांठों को तोड़ बाहर निकल आयी थी, जो जाने–अनजाने, संस्कार, अध्ययन और दूसरों के निकाले निष्कर्षों से बाध्य होकर वह अपनी बौद्धिकता व विचार शक्ति की ढीली डोरी में लगाकर अपने को बाँधती आयी थी । वह कहती है, ''जिस स्व–विश्लेषण का क्रम 'जितेन' से नैनीताल में भेंट होने पर शुरू हुआ था । आज उसके चले जाने पर पूरा हो गया। वह समझ गयी कि अपने जीवन की सार्थकता उसे अपने भीतर खोजनी होगी।"10 गोविन्द रजनीश इस उपन्यास के बारे में कहते है, ''इस उपन्यास की नायिका 'मनीषा' परम्परागत विवाह की एकरसता जितने की उदासीनता और सृजनशील मन की निष्क्रिय बेचैनी से उबकर 'मनीषा' मधुकर की भावुकता की ओर आकृष्ट होती है । उपन्यास में एक सृजनशील नारी के मानसिक संघर्ष, मनोभावों, अन्तद्वन्द्वों, सोचो, प्रक्रियाओं और अवचेतन में सुप्त कामनाओं को विश्लेषण द्वारा चित्रित किया गया है ।"11

कथा लेखिका सरिता कुमारी कहती हैं कि, 'उसके हिस्से की धूप' में पुराने नैतिक मूल्यों या मानव मूल्यों का विरोध किया गया है, और प्रेम संबंधी या सेक्स संबंधी नयी नैतिकता का उजागर किया है । इसमें स्त्री और पुरुष दोनों अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थापित तो करना चाहते हैं, लेकिन विघटन में नारी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थापित करने की प्रक्रिया में या तो टूट जाती है या बिखर जाती है । मृदुला जी ने 'मनीषा' के व्यक्तित्व को पूरी तरह जी कर इसे उजागर किया है । प्रेम के विविध रूपों को उभारा गया है– जैसे त्रास, पीड़ा, घृणा, कुण्ठा, जलन, द्वेष और हिंसा ।''12 मनीषा, 'जितेन' और 'मधुकर' के अस्तित्व से निकल कर अपना स्वतंत्र अस्तित्व खोजती है । परम्परा और भावुकता से यथार्थ के धरातल की खोज इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है । कुसुम शर्मा कहती है, '''उसके हिस्से की धूप' की नायिका जितेन की पत्नी होती है । अपने जीवन से उदासीन होकर मधुकर की सहवासी होती है । पर चार वर्ष बाद जितेन से पुनः मिलने पर उसके साथ के लिए व्याकुल हो जाती है । हर किसी के साथ बिताया गया जीवन अपने से अलग मानती है । कहीं कोई स्थानापन्न नहीं है । "13

निष्कर्ष:

मृदुला गर्ग जी का साहित्य सृजन उनके चिंतन–मनन के अनुरूप है । उनका चिंतन अधिक सच्चा, कालसापेक्ष है जो उनकी कृतियों में फुट पड़ा है । गर्ग जी का मनोजगत मानवतावाद तथा आधुनिकता की यथार्थदृष्टि के मिले–जुले तत्वो से निर्मित है । अतः गर्ग जी का साहित्य कुचली हुई नारी और पुरुष–वर्चस्व के इस समाज में नारी की वास्तविक स्थिति के अत्यंत महत्वपूर्ण दस्तावेज़ हैं ।

'उसके हिस्से की धूप' में मृदुला जी ने नारी संवेदना, मनोभावों, अन्तद्वन्द्वों, सोचों, प्रतिक्रियाओं अवचेतन में सुप्त कामनाओं को विश्लेषित किया है । जो सृजनशील लेखिका के रूप में अपने अस्तित्व को खोजती नजर आती है । उसकी इच्छाएं आकाक्षाएँ आधुनिकतावादी होने की ओर इशारा करती है । इस उपन्यास के बारे में यह दावा किया गया है, यह प्रेम कहानी तो है, लेकिन प्रेम इसकी समस्या नहीं है । यह मानव मात्र के लिए स्वतंत्रता की मांग करता है, जो स्त्री और पुरुष दोनों को समान रूप से चाहिए । यह उपन्यास आधुनिकता के नये मानदण्ड स्थापित करता है । इसमें प्रेम के विविध रूपों को उभारा गया है । जैसे–त्रास, पीड़ा, अहम्, घृणा, जलन, कुण्ठा, द्वेष और हिंसा । वह जिसे प्रेम समझती हैं, उसकी सहेली 'सुधा' उसे बचकानी रूमानियत मानती है ।

संदर्भ:

1. उसके हिस्से की धूप, मृदुला गर्ग, पृ. 23
2. उसके हिस्से की धूप, मृदुला गर्ग, पृ. 32
3. उसके हिस्से की धूप, मृदुला गर्ग, पृ. 39
4. उसके हिस्से की धूप, मृदुला गर्ग, पृ. 57
5. उसके हिस्से की धूप, मृदुला गर्ग, पृ. 85
6. उसके हिस्से की धूप, मृदुला गर्ग, पृ. 94–95
7. उसके हिस्से की धूप, मृदुला गर्ग, पृ. 17
8. उसके हिस्से की धूप, मृदुला गर्ग, पृ. 123
9. उसके हिस्से की धूप, मृदुला गर्ग, पृ. 126
10. उसके हिस्से की धूप, मृदुला गर्ग, पृ. 126
11. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोविंद रजनीश, पृ. 35
12. महिला कथाकारों की रचनाओं में प्रेम स्वरूप–विकास, सरिता कुमार, पृ. 179
13. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास: विविध प्रयोग, कुसुम कुमार, पृ. 123

फीजी में अकादमिक विचारों के साथ व्यक्तिगत अनुभव

एम. नधीरा शिवंति
हिन्दी अध्यापिका,
स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो, श्री लंका
इमेल: nadheerashewanthi@gmail.com
मोबाईल:+94777249145

भारत सरकार के संयोग से 12वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन 15 फरवरी से 17 फरवरी, 2023 तक फीजी के नादी शहर में आयोजित किया गया । इस सम्मेलन में भाग लेने का सुख समाचार स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र के निदेशक प्रो. (डॉ.) अंकुरण दत्ता जी द्वारा मिला। यह समाचार सुनकर एक बार तो मुझे ऐसा लगा कि इतनी दूर कैसे जाऊँ? लेकिन सभी शुभचिंतकों ने हौसला दिया कि यह बहुत अच्छा अवसर मिला है । इससे दुनिया भर के हिन्दी प्रेमियों से मिलने का अवसर मिलेगा और एक नया अनुभव भी प्राप्त होगा। क्योंकि पहली बार केंद्र की प्रतिनिधि बनकर फीजी जाना था । इससे पहले कभी केंद्र से इस तरह का आयोजन नहीं हुआ। थोड़े समय में सभी तैयारियाँ करनी थी । एक हफ़्ते के अंदर सब कुछ करना था । जैसे पासपोर्ट बदलना, बैंक की जानकारी लेना, वीज़ा का अप्लीकेशन भरना आदि । मैं एक ओर से सभी में भाग–दौड़ करने लगी। क्योंकि तमाम कामों के बीच फीजी की तैयारियाँ बहुत महत्वपूर्ण रही। हमें वहाँ जाने से पहले भारतीय उच्चायोग के उच्चायुक्त महामहिम श्री गोपाल बागले जी से मिलने का सुअवसर मिला और उन्होंने हमें इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए शुभ कामनाएँ दी और कहा कि इस अवसर पर आपको नए–नए अनुभव प्राप्त होंगे। उन्होंने हमें प्रेरणा दी जिससे हमारे दिल में इस सम्मेलन में भाग लेने की और जिज्ञासा बढ़ गयी।

फ़िर हम प्रो. अंकुरण जी से सांस्कृतिक केंद्र में मिलकर उनके अभिप्रेरणा, मार्गदर्शन और आदर्श से मन में ठान लिया कि हिन्दी भाषा की स्थिति श्रीलंका में सुदृढ़ रूप से दुनिया में बढ़ाना चाहिए । श्रीलंका और हिन्दी भाषा की शान को लेकर हमने फीजी के लिए प्रस्थान किया । हम पाँच, प्रतिनिधियों के रूप में कोलंबो से निकले । सफ़र के शुरू से अंत तक एक दूसरे का बहुत ध्यान रखा । फीजी के लिए हमें तीन विमानों से जाना पड़ा । फीजी के हवाई अड्डे पर उतरने के बाद नया अनुभव हुआ । वातावरण देखने से बिल्कुल श्रीलंका जैसा लगा । बारिश हो रही थी । देखने में लोगों की शक्ल नीग्रो लोगों की तरह लगी । हवाई अड्डे के अंदर एक तरफ़ से खड़े होकर संगीत वृंद वहाँ के लोक संगीत सुनाने लगे। फ़िर मैंने सोचा कि अभी से नए अनुभवों को इकट्ठे करते हुए जाना है । और उन सभी क्षणों को मोबाईल में कैद करने लगे।

फीजी हवाई अड्डे पर हमारा स्वागत उनकी पारंपरिक संस्कृति के अनुसार किया गया । फ़िर रात ही हम होटल शेरोटन के रात्री भोजन के लिए निकले। वहाँ भारतीयों के साथ भिन्न–भिन्न देशों से आये हुए हिन्दी प्रेमियों को देखकर बहुत अच्छा लगा। उनमें से प्रो. राम मोहन पाठक सर से मिलकर मन बहुत प्रसन्न हुआ । क्योंकि उन्हें 2018 बनारस में मिलने के बाद फ़िर मुलाकात इतनी दूर और वह भी विश्व हिन्दी सम्मेलन में हुई ।

वहाँ पहुँचने के बाद मैंने अपने आप को खुशनसीब समझा । क्योंकि श्रीलंका की प्रतिनिधि बनकर वहाँ जाने का सुअवसर महामहिम श्री गोपाल बागले जी और प्रो. अंकुरण दत्ता जी के प्रयास से मिला । मैं उन दोनों की आभारी हूँ। साथ ही मन में यह

विचार आया कि "मेहनत का फल मीठा होता है"। वह फीजी में सच निकला । वहाँ का माहौल देखकर ऐसा लगा कि प्रेमचंद जी की 'परीक्षा' उपन्यास में भी इस तरह से उल्लेख किया है कि उम्मीदवारों को देखने से मेला–सा लग रहा है । उसी तरह नादी में भी रंग–बिरंगे कपड़ों से सजधज कर हिन्दी प्रेमी इधर–उधर टहल रहे थे ।

प्रथम दिन उद्घाटन समारोह हुआ था । वह भारत के विदेश मंत्री डॉ. एस. जयशंकर प्रसाद जी और फीजी के राष्ट्रपति श्री वी. मुरलीधरन के करकमलों द्वारा किया गया । वहाँ की संस्कृति को प्रदर्शन करते हुए स्वागत संदेश, नृत्य, संगीत आदि प्रस्तुत किए गए । अनुभव के साथ हम एक के बाद एक देख रहे थे कि क्या हो रहा है? सुबह नाश्ते से लेकर रात्री भोजन तक खाने–पीने की सुविधाएँ उत्कृष्ट था । विदेश मंत्रालय के अधिकारियों और कुछ बनारस के प्रोफेसर गण से मिलकर ताज़ुब के साथ खुशियों का ठिकाना न रहा ।

उन्हीं हस्तियों के बीच में मुझे विगत वर्ष में श्रीलंका के भारत के उच्चायोग के उप उच्चायुक्त श्री अरिंदम बागची जी से मिलकर बहुत ही अच्छा लगा। उन्होंने कहा, "नधीरा, दुनिया बहुत छोटी है"।

12वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन हिन्दी के विकास की अनेक संभावनाओं को लेकर उपस्थित हुआ है । इस सम्मेलन जैसे आयोजनों से हमें एक–दूसरे के साहित्यिक योगदान के बारे में जानने का अवसर मिलता है । हिन्दी को वैश्विक भाषा बनाने की दिशा में सतत प्रयास किये जाएँगे । इस सम्मेलन में कई विषयों पर आयोजित सत्र बार–बार सुनने का मौका मिला । कुछ सत्र छूट गये थे । सम्मेलन में यह एक कमी महसूस हुई कि समानांतर सत्रों में भाग लेते हुए केवल एक ही सत्र के वक्ता को सुनने का मौका मिला और खासकर विदेश से आये अहिंदी भाषी प्रोफ़ेसर गण और हिन्दी अध्यापक गण को इस सम्मेलन में बोलने का अवसर देना था । तीन दिनों के अनुभवों के साथ सम्मेलन अच्छा चल रहा था । विदेश मंत्री से समूह तस्वीर लेते समय साक्षात्कार हुआ। फीजी के अनुभवों के साथ हम वापस श्री लंका के लिए लौटने को तैयार हुए। कोलंबो में आने के बीच हमें सिंगपोर हवाई अड्डे पर एक दिन रुकना पड़ा । इसलिए हम वहाँ का नज़ारा भी देख सकें। दोनों देशों के स्मरण के यादाश्त दिल और दिमाग में रखकर कोलंबो में उन्नीस तारिख को कदम रखा । आते समय सोचा कि निदेशक सर से कहकर कोलंबो में भी इस तरह के हिन्दी सम्मेलन का आयोजन करना है । ताकि हम भी बड़े न सही छोटे सम्मेलन से यह आदर्श दुनिया में पहुँचा सकते हैं कि श्री लंका में भी हिन्दी भाषा के प्रसार–प्रचार को लेकर बहुत काम हो रहे हैं ।

अंत में मैं इतना कहना चाहूँगी कि फीजी में आयोजित 12वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन एक सफ़ल और हिन्दी के विस्तार के लिए एक प्रगतिशील सत्र रहा। और ऐसा अनुभव रहा हिन्दी का दायरा दिन प्रति दिन विश्व में चारों तरफ़ बढ़ रहा है । और दुनिया भर के लोग अभी हिन्दी भाषा को जानने के लिए बहुत उत्सुक हो रहे हैं । और भारत सरकार के प्रयास भी इस दिशा में सराहनीय है । इस सम्मेलन के आयोजन में हमारे मन में श्रीलंका में हिन्दी का प्रचार–प्रसार और भी बढ़ाने के लिए प्रेरणा मिली। और वह दिन दूर नहीं जब हिन्दी भाषा विश्व पटल पर एक सर्वमान्य भाषा के रूप में जाने जाएगी ।

जय हिन्दी ! जय भारत !

"कलेक्टर बाबू"

स्वाति मिश्रा
व्याख्याता
बी. बी कॉलेज,आसनसोल
swatipunammishra@gmail.com
8170852337

चार साल बाद धर्मेश अपने गाँव पहुँचा । गाड़ी की सायरन की आवाज थमते ही उसकी जगह बैंड बाजे के शोर ने ले ली । ऐसा लग रहा है मानो सारा गाँव उसके दरवाजे पे खड़ा है । बाजे की धुन पर बेतहाशा नाचते–कूदते बच्चे, किशोर दांत निपोरते युवा, खास करके भाभियां, वाहवाही करते बुजुर्ग । पर इन सबसे धर्मेश को लेना देना नहीं है, उसकी नजरें तो टिकी है उसकी अम्मा, बाऊजी और छुटकी पर । बाऊजी अपनी भावनाओं को दबाए मुखिया जी के साथ खड़े हैं क्योंकि उनका मानना है कि समझदारी इसी में है कि दुख में ना धैर्य खोए और सुख में अति उत्साही ना बने । इतने पर भी उनकी आंखों की चमक और चेहरे का गर्व छिपाए नहीं छिप रहा था । दूसरी तरफ छुटकी और मां के चेहरे की जियोग्राफी अलग थी । आंखों में गंगा–यमुना और चेहरे पर दांतो के साथ–साथ जबड़ों का भी प्रदर्शन करने वाला 180 डिग्री की स्माइल । देखकर लगा,धर्मेश भी रो पड़ेगा ।

पिछली कार से उतरकर गनमैन ने कार का दरवाजा खोलकर कहा– "अबे धर्मेश...8:30 बज गए बे ।" धर्मेश की त्यौरियां चढ़ गई । इस गनमैन की इतनी हिम्मत! तभी गनमैन में उसके बांह पकड़ के जोर से झिंझोड़ा । धर्मेश की आंखें खुल गई, देखा तो वह अपने 6 बाई 6 की बिखरे, किताबों से भरे पड़े कमरे में खाट पर सोया है और सामने सतीश मुंह में ब्रश घुसेड़े खड़ा है । धर्मेश के जी में आया खूब खरी–खोटी सुनाए । इतनी खराब टाइमिंग? थोड़ी देर रुक नहीं सकता था । मां बाबूजी से मिल लेता, पर अब कहा भी क्या जाए ।

–"आज इतनी देर तक सोते रहे । देखो आज हम ने बाजी मार ली ।"–मुँह का ब्रश निकालते हुए सतीश बोला ।" हां ठीक तुम राजा बाबू बन गए ।"–धर्मेश के जी में आया एक जोर का कंटाप लगाएं पर बेचारे ने आगे कुछ न कहते हुए बाहर का रास्ता ले लिया ।" अबे हम काहे का राजा बाबू ...राजा बाबू तो तुम बनोगे । "मुंह का झाग थूकते हुए सतीश धर्मेश के पीछे हो लिया ।

सतीश की बातें धर्मेश चुपचाप सुने जा रहा था ।धर्मेश शुरू से ऐसा नहीं था । हंसमुख, खुशमिजाजी, शायराना शब्द उस पर अच्छे लगते थे । सतीश के साथ ही गांव से इलाहाबाद आया था वह । दोनों ने कॉलेज में एक साथ दाखिला लिया और यहीं से दोनों के सपनों ने उड़ान भरी।सतीश जहां कॉलेज के छात्र संसद का अध्यक्ष बना, वही धर्मेश सिविल सर्विसेज की तैयारी में लगा रहा । पर सतीश को लगता है कि धर्मेश इतनी मेहनत बेकार कर रहा है । उसे कोई दूसरी नौकरी कर लेनी चाहिए पर अपने दोस्त का मनोबल बनाए रखने में भी कोई कसर नहीं छोड़ता । पर हां, समय–समय पर छेड़ता जरूर है–"कितना भी पढ़ लो धरम रहोगे तो हमारे नीचे ही । हम बनेंगे सीएम और तुम रहना हमारे सलाहकार।" किसी तरह से हँसी रोकते हुए ढीठ की तरह सतीश कहता । "तुम ना .....नहीं सुधरोगे। आखिर क्या रखा है इस लीडरई में.... काजल की कोठरी.....।" फिर शुरू होता जीवन, कर्म, गौरव पर एक लंबा व्याख्यान । सतीश के लिए शायद यही उसकी लोरी थी ।

सतीश और धर्मेश अपनी पारी का इंतजार कर रहे थे। धर्मेश के लिए नया कुछ नहीं था। नया था तो बस यही कि इस बार वह अपनी फाइनल मेरिट का रिजल्ट देखने आया था। उसे उम्मीद थी कि इस बार वह सफल होगा ही।–" धरम, चलो चाय पी के आते हैं।पता नहीं पारी कब आए? तुमने सुबह से कुछ खाया भी नहीं था।"

–"नहीं मैं पहले रिजल्ट देख लूंगा।"

–"क्या यार धरम...यह क्या भीष्म प्रतिज्ञा है? और यह साले अंदर जाकर सो जाते हैं क्या? रुको मैं बात करता हूं।"

–" नहीं यार हमारी जब आएगी तब देख लेंगे।"

–"चुप रहो तुम।चेहरा देखो अपना।बिना खाए–पीये आ गए।"

कुछ ही मिनटों में सतीश और धर्मेश मॉनिटर स्क्रीन पर आंखें लगाए थे पर शायद अब सर्वर की बारी थी इंतजार कराने की। करीब बीसियों बार फॉर्मेट भर चुका था धर्मेश,पर हर बार फेल। अब तो सतीश का गला सूखने लगा था।–"धर्मेश मैं पानी लेकर आता हूँ।" कहकर सतीश कैफे से बाहर आ गया।उसे चिंता हो रही थी कि धर्मेश की क्या हालत होगी। मन ही मन उसने सारे देवी देवताओं को पुकारा। सब अच्छा हो। उसके दिमाग में गुणा–भाग चलने लगा।–"एग्जाम तो अच्छा दिया था धर्मेश ने। इंटरव्यू भी उसने बढ़िया ही दिया था। पर दो–तीन जगह पर अटक गया था। पर इससे क्या इतना तो सबके साथ होता है। हे प्रभु सहायता करो।"

पानी की बोतल लेकर सतीश धर्मेश के पास गया पर यह क्या? धर्मेश कोहनी टेबल पर रखे हाथ पर सिर टिकाए एकटक स्क्रीन पर देखा जा रहा था।

–"सतीश सब बर्बाद हो गया.....सब..... सब कुछ खो दिया मैंने.....।"धर्मेश की सांसे तेज चल रही थी।आंखें फटी हुई, हाव भाव पागलों से।

–"एक बार और देख ले धरम। हो सकता है कुछ गलती हो गई हो।" पर सतीश खुद को ही नहीं समझा पा रहा था।

–"मैं देखता हूं। ऐसा नहीं हो सकता यार।"पर नतीजा बदलने वाला तो नहीं ही था।

आधे घंटे बाद सतीश और धर्मेश दोनों कमरे में थे। धर्मेश को देखकर सतीश को लग रहा था वह अपने साथ एक जिंदा लाश लिए आया है।

–"धरम ...ऐसे चुप मत हो भाई। बोल कुछ। मेरे पर अपना गुस्सा दुख जो भी हो, निकाल ले। बस ऐसे चुप मत रह।" सतीश को डर लग रहा था कि धर्मेश को कुछ हो ना जाए।

"पता है धरम मुझे ना बहुत भूख लगी है..... तुम कुछ खाए नहीं तो सुबह से मैं भी कुछ नहीं खाया था। चलो ना चाय पी के आते हैं। छलछलाई आंखों से सतीश में धर्मेश का मन दूसरी ओर फेरना चाहा।

–"हाँ... अ.....वो..... मैं नहीं जाऊंगा... एक काम करो, तुम चले जाओ.....मेरे लिए भी कुछ लेते आना धर्मेश भर्राए गले से बोला। बहुत देर चुप रहने से आवाज टूट टूट कर निकल रही थे। पर सतीश को ऐसा लगा उसका दोस्त कोमा से बाहर आ गया हो। 'हां' कह कर खुशी के मारे दौड़ता हुआ कमरे से बाहर निकल गया।

चुपचाप बैठे धर्मेश की नजर फोन पर गयी।करीब पचासों मिस्ड कॉल्स, सौ से ज्यादा व्हाट्सएप मैसेज।सारे उसके कोचिंग इंस्टिट्यूट के साथी, सर और जान पहचान वालों के। सारे मैसेज लगभग वही पूछ रहे थे जो धर्मेश अपने जबान पर लाने से डर रहा था। इंस्टीट्यूट के ग्रुप में मैसेजों की भरमार थी।विवेक, पूजा, जस्सी, अहमद और उसकी जूनियर श्रुति को बधाई के मैसेज और हर मैसेज के साथ एक ही सवाल धर्मेश का क्या हुआ? तभी फोन वाइब्रेट होने लगा.....'बाबूजी?' ...'क्या कहेगा? वह तो उम्मीद में थे कि इस बार उनकी परेशानी खत्म हो जाएगी।पर उन्हें क्या पता, उनका नालायक बेटा फिर से फेल हो गया है।'

इस बार धर्मेश खुद को रोने से रोक नहीं पाया ।–"सब के दुख का कारण बना हुआ हूं।कुछ नहीं कर सकता मैं। ऐसी जिंदगी किस काम की? क्या खुशी दे रहा हूं? सब लोग बाबूजी को पूछेंगे और फिर बाद में बातें बनाएंगे तिवारी जी का लड़का फिर से फेल हो गया। पढ़ता क्या होगा शहर में? बाप के पैसों से मजे कर रहा है । मेरा रहना न रहना बराबर है । मुझे मर ही जाना चाहिए । हां..... तुझे मर जाना चाहिए धर्मेश। बेकार सी हो गई है तेरी जिंदगी। बोझ बन गया है तू। रह ही रहे हैं ना तेरे बिना घर के लोग ।..... तू जिंदा रहा तो एक न एक दिन लोगों की बात सुनते सुनते जरूर मर जाएंगे...।

बड़बड़ाते हुए वह अपने कमरे का आधा सामान बिखेर चुका था । पर जो उसे चाहिए वह मिल नहीं रही थी । करीब 10 मिनट के बाद घर में शांति से अपनी पढ़ाई की कुर्सी पर बैठा था । उसके हाथ में चूहे मारने की दवा की वही शीशी थी, जिसे वह इतनी देर से खोज रहा था । उसके हाथ कांप रहे थे, चेहरा, ललाट पसीने से भरा था । सांसे बहुत धीमी चल रही थी । तभी मेज पर पड़ा फोन घनघनाया। "माँ" आंसू भरे हुए आंखों से भी वह साफ पढ़ सकता था । बात करें या नहीं इसी असमंजस में कॉल कट गया । क्या कहेगा वह तो यह परीक्षा रिजल्ट कुछ नहीं समझती । उसे तो बस अपने बेटे के घर वापस आने का इंतजार है । कॉल दूसरी बार भी आकर कट चुका था और धर्मेश अपनी चेतनाशून्य आंखों से देखता रहा। धर्मेश के दिमाग ने कहा–"एक आखिरी बार बात कर ले धर्मेश ।फिर उसकी आवाज नहीं सुन पाएगा।" धर्मेश आंसू पोछता हुआ कॉल लगाने लगा । तीन–चार रिंग के बाद कॉल उठा ।

–" हेलो"

–"मां....."

–" कहो कलेक्टर बाबू, घर कब आ रहे हो?"

'कलेक्टर बाबू..?' पहली बार मां ने उसे ऐसे पुकारा था । उसके हाथों में शीशी की पकड़ ढीली पड़ गई । सांसे तेज हो गई । –"यह सपना सिर्फ मेरा नहीं मां का भी है इतनी बड़ी गलती करने वाला था मैं?" दिमाग की कोई नस फड़कते हुए उसे जिंदा होने का एहसास करा रही थी । उसकी आवाज की लड़खड़ाहट अब गायब हो चुकी थी । शांत और स्थिर आवाज में उसने बस इतना ही कहा–"अगले साल माँ..... अगले साल जरूर आएगा तेरा कलेक्टर बाबू ।"